ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 12

वार्षिक चंदा ₹ 150 दिसम्बर 2019 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | दिसम्बर 2019 | अंक 12

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
रबी फसलों में उत्पादन वृद्धि हेतु उपाय	पूजा, एस. एस. ढांडा एवं आर. एस. बेनिवाल	1
बेर के प्रमुख रोग व उनका नियंत्रण	राजेन्द्र सिंह बैनीवाल, हवा सिंह सहारण एवं सुरेन्द्र कुमार सहरावत	2
गन्ना फसल में खरपतवार : समस्या व रोकथाम	कुलदीप सिंह, मेहर चंद एवं नवीश कुमार	3
चीकू की उन्नत बागवानी	रणबीर सिंह सैनी, सुरेन्द्र सिंह एवं मुकेश कुमार	4
सरसों में लगने वाले कीट व उनकी रोकथाम	रामकरण गौड़, बिक्रम सिंह एवं अमरजीत	5
टमाटर : बीमारियां, लक्षण एवं समाधान	आर. एस. चौहान, अश्वनी कुमार एवं नरेन्द्र सिंह	6
गन्ने से गुड़ एवं खांडसारी का उत्पादन	कनिका पंवार एवं रमेश कुमार	7
अलसी: एक प्राकृतिक औषधि	अंजनी	8
पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका	कविन्द्र, कविता एवं देवराज़	9
पराली प्रबंधन में स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर की महत्ता	अनिल कुमार, कनिष्क वर्मा एवं राजेश कुमार	10
धान-गेहूं फसल चक्र : हरी खाद का महत्व	हरेन्द्र, कविता एवं कविन्द्र	11
वर्टिकल फार्मिंग: आधुनिक कृषि तकनीक	सुशील कुमार, संदीप भाकर एवं प्रीति यादव	12
जल संरक्षण: आज की मांग	प्रीति यादव, सरदूल मान एवं सुशील कुमार	19
बारानी खेती से उच्च पैदावार हेतु प्रभावी विस्तार शिक्षा	भरत सिंह घनघस, प्रदीप चहल एवं सूबे सिंह	20
मोटे अनाज : पौष्टिक महत्व एवं स्वास्थ्य लाभ	सुमन एवं सरोज दहिया	21
कृषि में जैविक खाद का महत्व	राखी धनखड़, सौरभ जाखड़ एवं जोगिन्दर सिंह मलिक	22
गेहूं में अड़ियल गुल्ली डंडे के लिए नए खरपतवारनाशक- शगुन एवं अवकीरा	सतबीर पूनिया, सुशील कुमार सिंह एवं मनजीत	23
कृषि वानिकी बहुउपयोगी वृक्ष	बिमलेन्द्र कुमारी एवं हरीश ओझा	24
कृषि ज्ञान प्रसार में सोशल मीडिया की शक्ति	सुनेश, अशोक बल्हारा एवं सज्जन सिंह	25
शतावरी की जड़ के पाऊडर के मूल्य संवर्धित खाद्य पदार्थ व उपयोग	प्रियंका रानी एवं वर्षा रानी	26
फसल अवशेष न जलाएं – खाद के रूप में प्रयोग करें	राजकुमार, अनिल कुमार एवं अजीत सिंह सांगवान	27
आर्गेनिक पोषक गृह वाटिका : स्वस्थ भोजन-थाली के लिये अत्यंत आवश्यक	भरत सिंह घणघस, प्रदीप कुमार चहल एवं सूबेसिंह	28
पराली जलाने के सामाजिक एवं आर्थिक नुकसान	जतेश काठपालिया, रश्मि त्यागी एवं सुभाष चन्द्र	29
Rain Water Management in Dryland Areas	S. K. Sharma Sube Singh and Naveen Kumar	30
Importance of Zero Tillage in Agriculture	Dhinu Yadav, Leelawati and Sube Singh	31
Role of Vermi-compost for Healthy Soil and Environment	Rakesh Kumar, Vikas and Manoj Kumar Sharma	32
क्यूं बचाएं हम बेटियां	सुषमा आनन्द एवं शालिनी किंगर	33
स्थाई स्तम्भ : जनवरी मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

सम्पादक (अंग्रेजी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

रबी फसलों में उत्पादन वृद्धि हेतु उपाय

✍ **पूजा, एस. एस. ढांडा एवं आर. एस. बेनिवाल**
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्तमान जलवायु परिवर्तन के दौर में विभिन्न फसलों का अपेक्षित उत्पादन एक गंभीर चुनौती है। मृदा उर्वरता घटने के कारण वर्तमान खाद्यान्न उत्पादन स्तर भी बरकरार रख पाना कठिन प्रतीत हो रहा है। कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी के लिए हमारे सामने दो महत्वपूर्ण विकल्प हैं - पहला यह कि हम पैदावार बढ़ाने के लिए कृषि योग्य भूमि में वृद्धि करें जो कि लगभग असंभव है। अब हमारे पास सिर्फ दूसरा महत्वपूर्ण विकल्प बचता है कि कम से कम क्षेत्रफल से अधिक से अधिक पैदावार लें। एकीकृत फसल प्रबंधन एक ऐसी विधि है जिससे पर्यावरण संरक्षित रखते हुए अधिक कृषि उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। दीर्घकालीन टिकाऊ खेती हेतु उत्पादन के विभिन्न घटकों जैसे भूमि, जल, मृदा एवं फसलों आदि के प्रभावशाली प्रबंधन करने होंगे। उपर्युक्त बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए रबी फसलों के उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि हेतु विभिन्न उपायों के विवरण निम्नलिखित हैं :

फसलों के उत्पादन वृद्धि हेतु उपाय

बुवाई पूर्व बीजोपचार : यह बीज जन्य रोगों की रोकथाम की सबसे आसान, सस्ती और लाभकरी विधि है। फफूंदनाशक रसायन बीज जन्य रोगाणुओं को मार डालता है अथवा उन्हें फैलने से रोकता है। यह एक संरक्षण कवच के रूप में बीजों के चारों ओर एक घेरा बना लेता है जिससे बीज को रोगजनक के आक्रमण एवं सड़ने से रोका जा सकता है। अदैहिक फफूंदनाशक जैसे-थाइरम, कैप्टान, डायथेन एम-45 की 2.5 से 3.0 ग्राम मात्रा जबकि दैहिक फफूंदनाशकों जैसे कार्बेन्डाज़िम वीटावैक्स की 1.5 से 2.0 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम बीज के उपचार के लिए पर्याप्त होती है। जैविक फफूंदनाशक ट्राइकोडर्मा विरडी, ट्राइकोडर्मा हरजिनेयम, ग्लोमस प्रजाति आदि मृदा जनित फफूदों जैसे- फ्यूजेरियम, राइजोक्टोनिया, स्क्लेराशियम, मैक्रोफोमिना इत्यादि के द्वारा होने वाली बीमारियों जैसे जड़ सड़न, आर्द्रगलन, उक्ठा, बीज सहन, अंगमारी आदि को नियंत्रित करते हैं। जैविक फफूंदनाशकों की 5-10 ग्राम मात्रा द्वारा प्रति किग्रा बीज का उपचार हेतु 50 किग्रा गोबर खाद में एक किग्रा ट्राइकोडर्मा अथवा बेसिलस सवटिलस या स्यूडोमोनास को मिलाकर छाया में 10 दिनों तक नम अवस्था में रखते हैं। तत्पश्चात् एक एकड़ क्षेत्र में फैलाकर ज़मीन में मिलाते हैं।

मृदा के उत्तम स्वास्थ्य हेतु जैव उर्वरकों का उपयोग : जैव उर्वरकों में मौजूद सूक्ष्मजीव में पौधों के लिये पोषक तत्व उपलब्ध कराने की क्षमता होती है। ये वायुमण्डलीय नत्रजन को भूमि में स्थापित (स्थिर) करने भूमि में अघुलनशील स्फुर व पोटाश जो खनिजों के अपक्षय से बनते हैं उन्हें घुलनशील बनाते हैं एवं कार्बनिक पदार्थों (जीवांश) को सड़ा-गलाकर पौधों के लिए उपयोगी बनाते हैं। जैव उर्वरक सरल, प्रभावी, प्रकृति अनुकूल एवं सस्ता साधन है, जिसका उपयोग कर कम लागत में वांछित पोषक तत्वों की पूर्ति कर सकते हैं।

जैव उर्वरकों से लाभ

वृद्धि कारक हारमोन्स, विटमिन्स व खनिज तत्वों की भी पूर्ति करने में सहायक हैं।

जैव उर्वरक प्रयोग से बीजों का अंकुरण शीघ्र होता है, पौधों की वृद्धि अधिक होती है।

जैव उर्वरकों के उपयोग से फसल उत्पादन में 10-20 प्रतिशत वृद्धि होती है।

जैव उर्वरकों का वर्गीकरण

राइजोबियम जैव उर्वरक : राइजोबियम जैव उर्वरक वातावरण की नाइट्रोजन को फसल के साथ सहभागिता/सहजीवी रूप में अवशोषित कर भूमि में स्थिर करते हैं। राइजोबियम द्वारा औसतन 40-80 किग्रा नत्रजन प्रति हैक्टेयर परिवर्तित होकर भूमि में बची रहती है जो आगामी फसल को लाभ पहुंचाती है।

एजेटोबैक्टर जैव उर्वरक: यह असहजीवी जीवाणु है जो पौधों की जड़ों में सतह में रहते हुए वायुमण्डलीय नत्रजन को परिवर्तित कर पौधों को उपलब्ध करवाते हैं। ये जीवाणु कुछ विशेष पादप वृद्धि विनियामक पदार्थों जैसे- जिबरेलिन का स्राव करते हैं जो फसल की उत्पादकता बढ़ाने के

फसल	प्रमुख तत्वों की अनुशंसित मात्रा (कि.ग्रा./है.)			समूह -1			समूह -2			समूह -3		
	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश	यूरिया	एस.एस.पी.	म्यूरेट ऑफ पोटाश	डी.ए.पी.	यूरिया	म्यूरेट ऑफ पोटाश	एन.पी.के.	यूरिया	म्यूरेट ऑफ पोटाश
गेहूं (असिंचित)	30	20	10	65	125	27	43	48	27	63	49	
गेहूं (अर्ध असिंचित)	60	40	20	130	250	34	87	118	34	125	95	
गेहूं (सिंचित)	100	60	40	217	375	67	130	166	67	188	168	27
चना, मटर (सिंचित)	20	60	20	43	375	34	130		34			
चना, मटर (असिंचित)	15	40	10	33	250	17	87		17			
मसूर (सिंचित)	20	50	20	33	313	17	108		17			
मसूर (असिंचित)	10	25	10	22	156	17	54		17			
सरसों (सिंचित)	80	40	20	174	250	34	87	140	34	125	141	
सरसों (असिंचित)	40	20	10	87	125	17	43	69	27	63	71	
तोरिया (सिंचित)	60	30	20	130	185	34	65	125	34	93	106	8
तोरिया (असिंचित)	30	15	10	65	94	17	33	63	17	47	53	4

नोट:- प्रत्येक तीन फसल उपरान्त ज़िंक सल्फेट 25 किग्रा/हैक्टेयर प्रयोग करें। तिलहनी फसलों में गन्धक की पूर्ति हेतु समूह-1 में दिए गए उर्वरकों का प्रयोग करें।

साथ ही कुछ एण्टीबायोटिक रसायन उत्सर्जित करते हैं जिससे फसल में लगने वाले भूमि जन्य रोग व वायरस रोगों से फसल का बचाव होता है। एजेटोबैक्टर के उपयोग से 20-40 किग्रा नत्रजन प्रति हैक्टेयर प्रतिवर्ष तक फसल को प्राप्त होती है।

फास्फोरस प्रदायी जैव उर्वरक (पी.एस.बी.): फास्फोरस प्रदायी जैव उर्वरक स्यूडोमोनास, वेसिलस, माइकोराइजा भूमि में उपस्थित अघुलनशील स्फूर को घुलन व गतिशील अवस्था में लाने का कार्य करते हैं। स्फूर प्रदायी जैव उर्वरक, भूमि में उपस्थित 70 प्रतिशत अघुलनशील स्फूर को घुलनशील व गतिशील अवस्था में लाकर पौधों में उपलब्ध कराते हैं जिससे पौधों की वृद्धि व विकास अच्छा होने से 8-10 प्रतिशत उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है।

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन: उर्वरक का प्रयोग खेत की मिट्टी परीक्षण के बाद करने से अधिक लाभदायी रहेगी। संतुलित खाद का अर्थ है कि किसी स्थान विशेष की मिट्टी, फसल और वातावरण के आधार पर तत्व यथा नत्रजन, स्फूर व पोटाश हेतु उपयुक्त उर्वरकों का प्रयोग। भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने के लिए प्रत्येक एक या दो वर्ष में एक बार अपने खेतों में पकी हुई गोबर की खाद (200-250 क्विंटल प्रति हैक्टेयर) या कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट आदि का उपयोग ठीक होगा। हरी खाद प्रमुखतया ढैंचा या सनई की 35-45 दिन की फसल को जुताई कर खेत में मिला देने से दो वर्ष तक किसी अन्य जैविक खाद के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती।

खाद देने का समय एवं विधि : उर्वरक बीज बोने से पहले सीड ड्रिल द्वारा ज़मीन में 10 सैं.मी. की गहराई पर डालना चाहिए या बोने के समय डबल पोर फड़क द्वारा बीज से 5 सैं.मी. नीचे डालना चाहिए। संतुलित खाद के उपयोग से फसल की बाढ़ संतुलित होती है जिससे अनायास पौधा गिरता नहीं है। मृदा का स्वास्थ्य ठीक एवं उर्वराशक्ति स्थिर बनी रहती है। उत्पादित फसल की गुणवत्ता ठीक रहती है जिससे बाज़ार भाव सही प्राप्त होता है।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

बेर के प्रमुख रोग व उनका नियंत्रण

✍ **राजेन्द्र सिंह बैनीवाल, हवा सिंह सहारण एवं सुरेन्द्र कुमार सहरावत**
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बेर हरियाणा प्रदेश की मुख्य फलदार फसलों में से एक महत्वपूर्ण फसल है। बेर की खेती प्रदेश के शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में बहुत कम लागत में सुगमतापूर्वक की जा सकती है। बेर की खेती हरियाणा के सोनीपत, रोहतक, गुड़गांव, हिसार, झज्जर, सिरसा, मेवात, भिवानी, फतेहाबाद व जींद में मुख्यत: की जाती है। हरियाणा प्रदेश के इन ज़िलों में बेर की खेती की अपार संभावनाएं हैं। बेर विटामिन 'सी' का अच्छा स्रोत है। भरपूर पैदावार लेने के लिए पौधों का बचाव बीमारियों से करना आवश्यक हो जाता है। बेर फसल में लगने वाली बीमारियां एवं उसकी रोकथाम के लिए निम्नलिखित सिफारिशें की जाती हैं :

सफेद चूर्णी रोग : इसरोग से ग्रस्त फल मटर के दाने के आकार के होने पर उस पर सफेद पाऊडर जमा होता है एवं वह बिखरा हुआ प्रतीत होता है। अधिक प्रकोप से फलों का आकार छोटा रह जाता है। फलों की सतह खुरदरी हो जाती है तथा पैदावार में भारी कमी हो जाती है।

इसके नियंत्रण हेतु पहला छिड़काव फूल निकलने से ठीक पहले और दूसरा फल जब मटर के दाने के बराबर हो जाएं तब 0.1 प्रतिशत कैराथेन का छिड़काव करें। पुन: 15 दिन के अन्दर-अन्दर छिड़काव करें। यदि कैराथेन उपलब्ध न हो तो 0.2 प्रतिशत सल्फेक्स का छिड़काव किया जा सकता है।

काजली रोग : इसप्रकोप से पत्तियां पीली होकर जल्दी गिर जाती हैं। पत्तियों के निचले भाग पर काला चूर्ण जम जाता है। इसके नियंत्रण के लिए 3 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोरोइड एक लीटर पानी (0.3%) के घोल का छिड़काव करें।

आल्टरनेरिया झुलसा रोग : इसरोग से जनवरी-फरवरी में पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे बनते हैं और बाद में पत्तियां झुलस जाती हैं। इसके नियंत्रण के लिए 2 ग्राम मैन्कोज़ेब या डाईथेन एम-45 या इंडोफिल एम-45 को एक लीटर पानी (0.2%) के घोल का छिड़काव करें। पुन: 15 दिन के बाद छिड़काव दोहराएं।

सरकोस्पोरा (पत्तों के धब्बे) : इस के प्रकोप से पत्तों पर छोटे-छोटे गोलाकार भूरे धब्बे एवं किनारे पर गहरे लाल रंग के दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप से पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं। इसके नियंत्रण हेतु 2 ग्राम मैन्कोज़ेब या डाईथेन एम-45 को एक लीटर पानी (0.2%) में घोल कर छिड़काव करें।

क्लैडास्पोरियम पत्तों के धब्बे : इसरोग से पत्तों पर हल्के भूरे रंग के छोटे-छोटे अनिश्चित आकार के धब्बे बनते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर गहरे भूरे या काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इसके बचाव हेतु 2 ग्राम मैन्कोज़ेब को एक लीटर पानी (0.2%) में मिलाकर छिड़काव करें।

फलगलन : फलके निचले हिस्से में हल्के भूरे रंग के धब्बे बनते हैं धब्बों के ऊपर छोटे-छोटे काले दाने धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। इसके बचाव हेतु 2 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड प्रति लीटर पानी (0.2%) के घोल का छिड़काव करें। उपर्युक्त बीमारियों की पहचान रखें। रोकथाम के लिए किसान पौध संरक्षण एवं बागवानी विभाग से सम्पर्क कर सकते हैं।

गन्ना फसल में खरपतवार : समस्या व रोकथाम

✍ **कुलदीप सिंह, मेहर चंद और नवीश कुमार**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गन्ना हरियाणा प्रांत में उगाई जाने वाली मुख्य नकदी फसल है जिसका क्षेत्रफल 1.14 लाख हैक्टेयर और उत्पादन 9.63 मिलीयन टन है। हरियाणा प्रदेश में गन्ने की औसत पैदावार लगभग 325 क्विंटल प्रति एकड़ है जो अभी भी गन्ने की उत्पादन क्षमता के मुकाबले काफी कम है। कम पैदावार व कम लाभ के मुख्य कारणों में गन्ना फसल में खरपतवार की समस्या प्रमुख कारणों में से एक है। गन्ने की खेती में खरपतवार की समस्या निम्न कारणों से अन्य फसलों से अलग है। क्योंकि:

1. गन्ना अपेक्षाकृत चौड़ी दूरी पर बोया जाता है।
2. गन्ने का विकास प्रारंभिक अवस्था में बहुत धीमा होता है और अंकुरण पूरा करने के लिए 40-45 दिन लेता है।
3. गन्ना को अधिक खाद व अधिक पानी की आपूर्ति की स्थिति में उगाया जाता है।
4. खरपतवारों का जमाव फसल के साथ-साथ या इससे पहले शुरू हो जाता है।

गन्ने की कतार के अन्दर की बजाय गन्ने की कतारों के साथ उगने वाले खरपतवार अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। विभिन्न परीक्षणों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि खरपतवार गन्ना फसल में पानी एवं प्रकाश की प्रतिस्पर्धा के अलावा लगभग गन्ने के मुकाबले 4 गुणा नाईट्रोजन व फास्फोरस तथा 2.5 गुणा पोटाश ज़मीन से ले लेते हैं। खरपतवार कुछ बीमारियों एवं कीटों को आश्रय देते हैं और गन्ना फसल में एक अप्रत्यक्ष नुकसान होता है। खरपतवार भूमि से लगभग 20 -25 किलो नाइट्रोजन तथा 30 प्रतिशत तक जल ले लेते हैं इसलिए अगर खरपतवार नियंत्रण समय पर न किया जाए तो 20-30 प्रतिशत पैदावार कम हो जाती है। फलस्वरूप गन्ने की बिजाई (अक्तूबर) व बसंत (फरवरी - मार्च) में की जाती है। खरपतवारों का घनत्व एवं प्रजाति, कृषि क्रियाओं, फसल चक्र एवं खरपतवार नाशकों के उपयोग पर निर्भर करते हैं। उप उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में गन्ने को उगने में 40-45 दिन लगते हैं और इसी दौरान विभिन्न प्रजाति के खरपतवार खेत में उग आते हैं। सबसे पहले मोथा घास का जमाव होता है और ज़मीन को ढक लेता है तथा गन्ने के जमाव से पहले ही पानी एवं उर्वरकों के लिए प्रतिस्पर्धा करके गन्ने के जमाव को प्रभावित करता है। मोथा घास को गन्ना उगाने वाले क्षेत्रों में सबसे महत्वपूर्ण खरपतवार माना गया है। एट्राजीन एवं 2, 4-डी खरपतवार नाशकों के लगातार उपयोग के कारण संकरी पत्ती व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की संख्या में काफी कमी आंकी गई है। जबकि मोथा घास की समस्या लगातार बढ़ती जा रही है और खरपतवार घनत्व के आधार पर अकेले मोथा घास का घनत्व 70-90 प्रतिशत तक पाया गया है। मोथा घास को काबू करने के लिए केवल निराई-गोड़ाई की ही सिफारिश है। परन्तु निराई-गोड़ाई के बाद ही इसकी बढ़वार जल्दी चालू हो जाती है। मोथा घास में नीचे गांठें होती हैं और इन्हीं गांठों से आगे और गांठे बनती हैं और नये पौधे बनते रहते हैं और धीरे-धीरे यह एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। आज के युग में कोई भी खरपतवार नाशक विधि तब तक पूर्ण नहीं मानी जाती जब तक वह मोथा घास को काबू करने की क्षमता न रखती हो। गन्ना फसल में विभिन्न परीक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि फसल विकास के प्रारंभिक 90 दिन (नौलफ फसल), 120 दिन (मोढ़ी फसल) एवं 60 दिन (गेहूं काटने के बाद पछेती बिजाई) की अवधि खरपतवार प्रतिस्पर्धा के लिए सबसे महत्वपूर्ण अवधि मानी गई है। इसलिए कोई भी खरपतवार प्रबंधन तकनीक में पहले 2-4 महीने की अवधि में गन्ना खरपतवार से मुक्त रहना चाहिए।

गन्ना फसल के मुख्य खरपतवार:

घास जाति वाले: मकड़ा, मंघाना, सांवक, चिड़ियों का दाना एवं तकड़ी घास।

चौड़ी पत्ती वाले: सांठी, दूधी, नूणिया, पलपोटन, भाखड़ी, चौलाई, तांदला, कनकुआ, कागारोटी, जलभंगडा, कचभोड़न (मकोय) गाजर घास एवं बेल।

बहुवर्षीय : दूब, बरु, कांस, डीला (मोथा) व हिरण खुरी।

गन्ने की बिजाई के बाद पहले डीला सांठी, नूणिया, पलपोटन, मकोव व चौलाई आदि घास आते हैं। इसके बाद बरसात का मौसम शुरु होते ही घास जाति वाले खरपतवार जैसे कि सांवक, मकडा व तकडी घास इत्यादि उगने शुरु हो जाते हैं।

गन्ना फसल खरपतवार नियंत्रण के लिए निम्नलिखित विधि अपना सकते है:

निराई-गुडाई : गन्ने की फसल में खरपतवार नियन्त्रण के लिये बिजाई के 7-10 दिन बाद अंधी गुडाई करके सुहागा लगा देना चाहिये। उसके बाद एक गुडाई बिजाई के एक महीने पहले व दूसरी गुडाई पहली सिंचाई के 10 दिन बाद जब खरपतवार उगने शुरु हो जायें तो ही करनी चाहिये। जब बरसात का मौसम शुरु हो जाये तो गन्ने की फसल में खुडों के बीच हल चलाने से बचे हुये खरपतवारों का नियन्त्रण हो जाता है। परन्तु आम तौर पर देखा गया है कि गन्ने की गुडाई का समय होता है तो गेहूँ की कटाई धान की पनीरी की बिजाई इत्यादि काम में किसान व्यस्त हो जाते हैं व गुडाई के लिये मज़दूर मिलना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था में खरपतवारनाशक के प्रयोग से इस समस्या से काफी हद तक छुटकारा मिल सकता है।

गन्ने की सूखी पत्ती खेत में बिछाकर : गन्ने में 4-5 इंच सूखी पत्ती कतारों में बिछाकर बेहतर खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। यह खरपतवार निंयत्रण के साथ-साथ सूखे की स्थिति में नमी भी बनाये रखती है।

फसल-चक्र अपनाकर : जिन खेतों में बार-बार गन्ना उगाया जाता है वहां खरपतवारों की समस्या अधिक होती है एक सही फसल चक्र को अपनाकर जिसमें विभिन्न प्रकार की फसलों को समायोजित करके खरपतवारों की समस्या काफी हद तक कम की जा सकती है। जैसे : (1) धान-आलू-गन्ना (नौलफ)- मोढी-सूरजमुखी/गेहूँ-धान (2) गन्ना (नौलफ) - मोढी-सूरजमुखी/मक्की/प्याज़-धान, सूरजमुखी, सोयाबीन, लेबिया, बरसीम व ज्वार आदि फसलों को भी समायोजित करके खरपतवार पर नियन्त्रण कर सकते हैं।

गन्ने में अन्त: फसलीकरण : शुरु में गन्ना फसल में कम बढवार व कतारों में अधिक फासला होने के कारण गन्ना में अन्त: फसल उगा कर खरपतवारों की संख्या को काफी हद तक नियंत्रण कर सकते हैं। शरदकालीन गन्ने में लहसुन, प्याज़, बंदगोभी, फूल गोभी, मेथी, पालक, सरसों एवं गेहूं तथा बंसतकालीन गन्ने में मूंग, उड़द, भिंडी, ककड़ी, खीरा, खरबूजा और बेल वाली फसलें आसानी से उगाई जा सकती हैं।

फसल का उचित प्रबन्धन : फसल का उचित प्रबंधन एवं देखभाल भी खरपतवार नियंत्रण का आवश्यक अंग है। जल्दी व बराबर जमाव और फसल की जल्दी बढ़वार खरपतवारों को बढ़ने से रोकती है और जो खरपतवार गन्ना फसल के नीचे उगते हैं, वो प्राय: कमज़ोर रहते हैं।

इसलिये खरपतवारों की समस्या वहां अधिक होती है। जल्दी व बराबर जमाव के लिये ताज़ा व स्वस्थ बीज को फफूंदीनाशक दवा द्वारा उपचारित करके सही-सही नमी में बिजाई करनी चाहिये। अच्छे जमाव के बाद पानी व उचित खाद डालकर जल्दी बढ़वार ली जा सकती है।

रासायनिक विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण : आमतौर पर गन्ने में विभिन्न प्रकार व लम्बे फसल चक्र की वजह से कोई भी एक खरपतवार नाशक एक बार में संतोषजनक नियंत्रण नही कर सकता। इसलिये खरपतवार नियंत्रण के लिये गन्ना उगने के बाद के खरपतवारनाशक व गन्ना उगने से पहले के खरपतवार नाशक व गोडाई दोनो क्रियाओं को समायोजित करना अति आवश्यक है। मज़दूरों की अनुपलब्ता एवं मौसम की खराबी के कारण कई बार निराई/गोड़ाई संभव नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में खरपतवार नाशक ही एकमात्र विकल्प रह जाता है।

1. एट्राजीन 50 प्रतिशत 1.6 किलोग्राम मात्रा को 250 लीटर पानी में घोल कर बिजाई के तुरंत बाद छिड़काव करें। दवाई के छिड़काव के समय भूमि की उपरी सतह में उचित मात्रा में नमी होना अति आवश्यक है। एट्राजीन को पहली सिंचाई के बाद गोड़ाई करके खड़ी फसल में छिड़काव भी कर सकते हैं। इससे गन्ना फसल पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए 1.0 किलोग्राम 2, 4-डी (80 प्रतिशत सोडियम नमक) प्रति एकड़ 200 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
2. यदि गन्ना फसल में दूब व मोथा की समस्या हो तब 2,4-डी इस्टर या अमाईन दवा का 400 ग्राम प्रति एकड़ 200-250 पानी में घोलकर छिडकाव करें। आवश्यकतानुसार 15 दिन पश्चात् दोबारा छिडकाव करें। ध्यान रहे कि 2,4-इस्टर मोथा घास को केवल ज़मीन के ऊपर से नष्ट करता है।
3. नौलफ फसल में मोथा घास को काबू करने के लिए सैंपरा (75 प्रतिशात हैलोस्लफ्यूरान मिथाईल) को पहली सिंचाई के दो दिन बाद 36 ग्राम दवा प्रति एकड़ को 200 लीटर पानी में घोल कर फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करना बहुत कारगर पाया गया है। यह छिडकाव मोथा की 3-6 पत्ती की अवस्था में ही करें।
4. पिछले कुछ वर्षों से गन्ने के पौधे पर लिपटने वाली बेल की समस्या बढ़ती जा रही है। अगर खेत में बेल व अन्य चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार अधिक हों तो आलमिक्स 8 ग्राम या 2,4-डी इस्टर/अमाईन की 400 मि. ली. की मात्रा 150 लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करें।

अन्त: फसलीकरण में खरपतवार नियंत्रण : गन्ना फसल के साथ अन्त: फसलीकरण में एट्राजीन का प्रयोग न करें। अन्त: फसलीकरण में पैंडीमिथेलीन 1000-1250 ग्राम प्रति एकड़ दवा 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के दो-तीन दिन के अन्दर छिड़काव करें। वही खरपतवार नाशक प्रयोग में लाएं जो दोनों फसलों के लिए सुरक्षित हों। जिन अन्त: फसलों में खरपतवार नाशक प्रयोग नहीं किया जा सकता उनमें एक या दो गोड़ाई पर्याप्त होती हैं।

मोढ़ी फसल/पेड़ी फसल में एकीकृत खरपतवार नियंत्रण : नौलफ फसल काटने के 1, 4 एवं 7 सप्ताह बाद गोड़ाई अवश्य करें। मज़दूरों की कमी व अधिक खर्चे रोकने के लिए पहली गोड़ाई के बाद एट्राजीन 1.6 किलोग्राम प्रति एकड़ तथा बाद में 2, 4-डी (सोडियम नमक 80 प्रतिशत) को 200 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें। मोढ़ी फसल में मोथा घास की रोकथाम सेम्परा 74 प्रतिशत डब्ल्यू पी की 36 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 150 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यह छिड़काव मोथा की 3-6 पत्ती की अवस्था में ही करें। इसके अलावा एक पंक्ति छोड़कर दूसरी पंक्ति में सूखी पत्ती बिछाकर खरपतवार नियंत्रण करना एक अच्छा विकल्प है।

चीकू की उन्नत बागवानी

✍ **रणबीर सिंह सैनी, सुरेन्द्र सिंह[1] एवं मुकेश कुमार[2]**
कृषि विज्ञान केन्द्र, मण्डकौला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

चीकू सेपोटेसी कुल का फल वृक्ष है जिसकी बागवानी उष्ण व अर्धउष्ण क्षेत्रों में अत्यंत लोकप्रिय व लाभप्रद है। हरियाणा में इसकी बागवानी मुख्यत: पंचकूला, अंबाला, यमुनानगर व कुरुक्षेत्र में की जाती है तथा उत्तरी हरियाणा के किसानों के लिए वरदान साबित हुई। पिछले कुछ वर्षों के अनुभवों के आधार पर यह स्पष्ट हो गया कि उस अवस्था में भी इस पर पाले का कोई प्रभाव नहीं होता जबकि अन्य फलों पर पाले का प्रकोप अत्यंत नुकसानदायक रहा। चीकू पर फलन व बाज़ार में आवक पूरा वर्ष होने के कारण बागवानों को इसका सभी प्रकार (निम्न से उच्चतम) का भाव मिलने के कारण कुल औसत आय 70000-100000 रुपये प्रति एकड़ तक प्राप्त की जा सकती है। चीकू की बागवानी के लिए मुख्य कार्य बिन्दु निम्नलिखित हैं :

मिट्टी : चीकू अनेक प्रकार की भूमि पर लगाया जा सकता है। परंतु गहरी, उत्तम जल निकासी वाली दोमट मिट्टी जिसमें भूमिगत जल स्तर 2 मीटर से नीचे हो व 2 मीटर के अंतर्गत कंकर की सख्त सतह न हो, उत्तम है।

किस्में :

1. क्रिकेट बॉल : बड़े आकार के गोल व बहुत मीठे फल, दानेदार गुद्दा, हरियाणा की जलवायु के लिए अति उपयुक्त।

2. काली पत्ती : नरम, रसदार, मीठे व हल्की खुशबूदार तथा अण्डाकार फल, फलन मुख्यत: सर्दियों में व फल अकेले-अकेले लगते हैं।

3. बारामासी : मध्यम आकार के गोलाकार फल, वर्षभर फलन।

4. अन्य किस्में : सीओ 1 (सघन बागवानी के लिए उत्तम व उपयुक्त), सीओ 3 (संकर किस्म), पाला, गुथी, कीर्ति तथा भारती (अधिक दूर परिवहन व प्रसंस्करण के लिए सर्वोत्तम)

बाग लगाने का समय : जुलाई से सितम्बर

पौधे की संख्या व दूरी : 72-56(8-9 मीटर पौधे से पौधा व पंक्ति से पंक्ति)

पौध प्रवर्धन विधि : गूटी, इनार्चिंग व विनियर ग्राफ्टिंग द्वारा।

खेत में लगाते समय पौधे की आयु-डेढ़ वर्ष व ऊंचाई 2-3 फुट होनी चाहिए वरना पौधे देरी से फलित होंगे। रोपण करते समय गाची(अर्थ बाल) बिखरनी नहीं चाहिए।

पौधों का सर्दी व गर्मी से बचाव : अत्यधिक गर्मी व तीव्र सर्दी के मौसम में पौधों में जल्दी-जल्दी सिंचाई करें। आवश्यकता पड़ने पर सर्दी (पाले) से बचने के लिए पौधे को घास-फूस, पराली या पॉलीथीन आदि से ऊपर व तीनों दिशाओं (दक्षिण-पूर्वी को छोड़कर जिससे धूप भी मिलती रहे) से ढक देना चाहिए। बाग के चारों ओर बाड़ व वायुरोधक पौधे लगाएं।

सिधाई एवं काट-छांट : पौधेका मज़बूत मुख्य तना विकसित होना अनिवार्य है क्योंकि यह वृक्ष को मज़बूती प्रदान करता है। आरंभ में पार्श्व शाखाएं मुख्य तने के विकास में अत्यंत सहायक होती हैं। अत: पौधे के चारों ओर पार्श्व शाखाएं बढ़ने दें। इनार्चिंग व विनियर ग्राफ्टिंग से तैयार किए पौधों में मूलवृन्त से निकलने वाली सभी शाखाएं समय-समय पर निकालते रहें। वृक्ष बड़े होने पर ज़मीन के नज़दीक से निकली शाखाएं झुक जाती हैं व फल नहीं देतीं। इन्हें निकाल देना चाहिए। फलित पौधों में काट-छांट की आवश्यकता नहीं होती। केवल कीट व रोगग्रस्त तथा सूखी

[1]सहायक निदेशक (बागवानी), ए.डी.टी. कार्यालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]सहायक वैज्ञानिक (बागवानी), क्षेत्रीय अनुसन्धान केन्द्र, बावल।

टहनियों को निकालते रहना चाहिए।

अन्त: फसलीकरण : आरंभके 6-7 वर्षों तक, जब तक कि वृक्ष पूरी तरह विकसित नहीं होते, बीच की खाली भूमि में अन्त: फसल जैसे पपीता, फालसा, सब्जियां, दलहनी व चारे वाली, फसलें उगाकर फलन पूर्व अवस्था में आय की भरपाई की जा सकती है।

निराई-गुड़ाई व खरपतवार नियन्त्रण : छोटेपौधों में 15-20 दिन के अंतराल पर निराई-गुड़ाई करने से जड़ों में बेहतर वायु संचार से पौधे जल्दी से बढ़ते हैं और खरपतवारों से भी मुक्ति मिलती है, जो नमी व पोषक तत्वों का ह्रास करते हैं। फलित बागों में वर्ष में चार-पांच बार थांवलों में निराई-गुड़ाई करें व बीच की भूमि की ट्रैक्टर अथवा पावर टिल्लर से जुताई करें।

खाद एवं उर्वरक : पूर्ण फलित पौधों में प्रति पौधा दिसम्बर जनवरी में 40 कि.ग्रा. देसी खाद व सिंगल सुपर फास्पफेट और पोटाश की पूरी मात्रा डाल दें। नत्रजन की आधी मात्रा फरवरी व शेष जुलाई-अगस्त में डालें।

तालिका: चीकू के लिए खाद व उर्वरक (मात्रा ग्राम प्रति पौधा)

पौधे की आयु (वर्ष)	देसी खाद	यूरिया	सिंगल सुपर फास्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1-3	10	100	125	125
4-6	20	200	250	250
7-10	30	400	500	500
11 व अधिक	40	800	1000	750

सिंचाई : चीकू अल्कालिक सूखे की स्थिति सहन कर सकता है। परंतु ऐसी अवस्था में उपज में कमी आती है। छोटे पौधों की सिंचाई ग्रीष्म ऋतु में 5-7 दिन व सर्दी में 10-15 दिन के अंतराल पर करें। फलित बागों की सिंचाई आवश्यकतानुसार 20-25 दिन के अंतराल पर करना वांछित है। फलों की बढ़वार/विकास के समय सिंचाई/नमी बने रहने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

फलन व तोड़ाई : वैसे तो चीकू में पूरे वर्ष फूल-फल बनता है। परंतु अक्तूबर-नवम्बर व फरवरी-मार्च में प्रचुर मात्रा में फूल-फल बनता है। फलन तृतीय से चतुर्थ वर्ष में आरंभ होकर 30 वर्ष तक जारी रहता है और उसके बाद घटने लगता है। फल बनने से परिपक्व होने में करीब चार मास का समय लगता है। कम फलन की अवस्था में फूल आने से पहले व फल मटर के दाने के बराबर होने पर 100 पी.पी.एम. (100 मिलीग्राम प्रति लीटर पानी) एस.ए.डी.एच. या 50 पी.पी.एम. नेफथेलीन एसिटिक अम्ल(एल्कोहल में घोलकर) का छिड़काव करें।

कीट, बीमारियां एवं रोकथाम

1. दीमक : दीमक से बचाव के लिए 15-20 मिली लीटर क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. 15-20 लीटर पानी में मिलाकर प्रति पौधा 30-45 दिन के अन्तराल पर डालें।

2. फल छेदक : यह छोटे-छोटे फलों में छेद करके अंदर घुस जाता है जिससे फल या तो गिर जाते हैं या मण्डीकरण लायक नहीं रहते। इसके नियन्त्रण के लिए 1 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।

3. लीफ माइनर : यह फलों के अंदर सुरंग बनाकर हानि पंहुचाता है। नियन्त्रण के लिए 1 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. प्रति लीटर पानी घोलकर छिड़कें।

4. पुष्प व कली खाने वाली सूण्डी : यह पुष्प व पुष्प कलियों व छोटे फलों को नुकसान पहुंचाती है और प्रकोपित पुष्प, कली व फल झड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 1 मि.ली.रोगोर 30 ई.सी. प्रति लीटर पानी के घोल का 15 दिन के अंतर पर दो बार छिड़काव करें।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सरसों में लगने वाले कीट व उनकी रोकथाम

✍ **रामकरण गौड़, बिक्रम सिंह एवं अमरजीत**
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत की लगभग 55 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। सरसों रबी में उगाई जाने वाली फसलों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सरसों वर्गीय फसलों के अंतर्गत तोरिया, राया, तारामीरा, भूरी व पीली सरसों आती है। भारत में सरसों वर्गीय फसलों के अन्तर्गत लगभग 67 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल तथा उत्पादन लगभग 64 लाख टन वर्ष 2017-18 में आंका गया। विभिन्न राज्यों में विभिन्न फसलें उगाई जाती हैं। हरियाणा में सरसों का मुख्य क्षेत्रफल रेवाड़ी, महेन्द्रगढ़, हिसार, सिरसा, भिवानी व मेवात ज़िलों के अन्तर्गत आता है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान की पूर्ति करना एक बड़ी बात है। किसान सरसों उगाकर अच्छा लाभ कमा रहे हैं। अगेती सरसों में चित्तकबरा कीड़ा (धोलिया) अधिक हानि पहुंचाता है तथा पछेती सरसों मे चेपा का अधिक प्रकोप रहता है। अत: इन फसलों की तापक्रम व मौसम की अनुकूल परिस्थिति को ध्यान में रखकर बिजाई करनी पड़ती है। सरसों के कीटों को किसान अच्छी तरह पहचान कर उनका आसानी से नियन्त्रण कर सकते हैं।

चित्तकबरा कीट या धोलिया : यह सरसों का मुख्य कीट है। इस कीट के शिशु व प्रौढ़ पौधों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं। इसके शिशु व प्रौढ़ अण्डाकार होते हैं जिनके उदर पर काले भूरे धब्बे होते हैं। यह पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं। जिसके कारण पत्तियों पर सफेद धब्बे बन जाते हैं। इस कारण इस कीट को धोलिया भी कहते हैं। इस कीट का आक्रमण अधिक होने पर पौधे सूख जाते हैं। कीट का प्रकोप फसल की प्रारंभिक अवस्था व कटाई के समय अधिक होता है। यह कीट मार्च से अक्तूबर तक सक्रिय रहता है। अधिक सर्दी में वयस्क अवस्था में निष्क्रिय रहता है।

रोकथाम : इस कीट का आक्रमण फसल उगने के समय होने पर 200 मि.ली. तथा फसल कटाई के समय होने पर 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का 200 व 400 लीटर पानी प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

सरसों की आरा मक्खी : यह हाइमेनोप्टरा वर्ग का एक मात्र, हानिकारक कीट है जो फसल को नुकसान पहुंचाता है। इस कीट की गहरे रंग की सूण्डी पत्तियों में छेद करके तथा नई प्ररोह को काटकर हानि पहुंचाती है। इसकी सूण्डी दिन के समय छिपी रहती है। छेड़ने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे मरी पड़ी हो। इसके उदर के ऊपरी भाग पर पांच काले रंग की पट्टियां होती हैं।

सरसों का माहू/चेपा/अल : इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ समूह में रहकर पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसकर हानि पहुंचाते हैं जिससे फलियां व तना चिपचपा हो जाता है। फलियों में दाने नहीं बन पाते हैं और दाने बनते भी हैं तो कमज़ोर बनते हैं। यह कीट हल्के हरे रंग का होता है। जो कभी पंख रहित व कभी पंख सहित होता है जो फरवरी-मार्च माह में उड़ते भी दिखते हैं। इस कीट की संख्या दिसम्बर से मार्च माह तक प्रचुर मात्रा में होती है। कीट बिना निषेचन ही सीधे शिशु पैदा करते हैं।

रोकथाम

1. फसल की बिजाई ज़्यादा देरी से न करें।

2. आक्रमण शुरू होने पर कीटग्रस्त टहनियों को तोड़कर नष्ट कर दें।
3. कीट का आर्थिक स्तर (ETL), 10 प्रतिशत पुष्पित पौधों पर 9-19 कीट या औसतन 13 कीट प्रति पौधा होने पर निम्न कीटनाशकों का छिड़काव करें।

250 से 400 मि.ली. (मिथाइल डेमेटान मेटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी. या डाइमेथोऐट (रोगोर) 30 ई.सी. को 250 से 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करें।

सुरंग बनाने वाली सूण्डी : इस कीट की सूंडियां पत्तियों में सुरंग बनाकर हरे पदार्थ को खाती हैं। पत्ता सूर्य की तरफ करने पर कीट साफ दिखाई देता है। पौधे कमज़ोर हो जाते हैं तथा उत्पादन पर भी असर पड़ता है।

रोकथाम : माहू/अल की रोकथाम हेतु बताए गए कीटनाशक से इसका नियंत्रण भी प्रभावी ढंग से हो जाता है।

बालों वाली सूंडियां : इन सूंडियों का आक्रमण अक्तूबर से नवम्बर में अधिक होता है। आरंभ में यह सूंडियां सामूहिक रूप में रहकर फसल की पत्तियों को खा जाती हैं। बड़े होने पर अकेले रहकर सारे खेत में फैल जाती हैं।

रोकथाम : ऐसी पत्तियां जिन पर सूंडियां समूह में हों उन्हें तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

गुजिया विविल : इस कीट का प्रकोप रिवाड़ी ज़िले में कहीं-कहीं देखने को मिला है। यह सरसों के उगते हुए पौधों को खत्म कर देता है जिससे पौधों की संख्या खेत में कम रह जाती है।

रोकथाम : इस कीट के नुकसान की भरपाई के लिए किसान अधिक बीज का उपायोग कर सकते हैं। इस कीट की रोकथाम के लिए अभी किसी दवाई की सिफारिश नहीं की गई है।

नोट : छिड़काव कार्यक्रम सदैव 3 बजे के बाद करें ताकि मधुमक्खियों को कोई नुकसान न हो, जो उपज बढ़ाने में सहायक होती हैं।

(पृष्ठ 5 का शेष)

5. छाल खाने वाली सूण्डी : यह कीट टहनियों के अंदर सुरंग बनाकर हानि पहुंचाता है। रात को सुरंग से बाहर निकलकर छाल खाता है। और मल को बुरादे या जाले के रूप में छोड़ता है। यदि उपचार न किया जाए तो कुछ समय बाद वृक्ष मर जाता है। नियन्त्रण हेतु मिट्टी के तेल या 10 मि.ली. मैटासिड 20 ई.सी. का 10 लीटर पानी में घोल बनाकर एक सिरिंज की मदद से सभी छिद्रों को भरें व तत्पश्चात रूई या गारा से बन्द करें व पूर्ण नियन्त्रण होने तक यही प्रक्रिया दोहराएं। आस-पास के छायादार व अन्य प्रभावित वृक्षों पर भी उपचार करें।

बीमारियां :

पत्ता धब्बा रोग : पत्तों पर अनेक लाल-भूरे ध्ब्बे दिखाई देते हैं।

नियन्त्रण : रोधककिस्में जैसे क्रिकेटबॉल, सीओ 2 आदि लगाएं। लक्षण नजर आने पर 0.5 प्रतिशत इण्डोफिल एम-45 का छिड़काव करें।

सूटी मोल्ड : यह बीमारी कीटों के प्रकोप से उत्पन्न शहदनुमा पदार्थ पर विकसित होती है जिससे फल टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। नियन्त्रण के लिए 0.3 प्रतिशत जिनेब का छिड़काव करें।

टमाटर : बीमारियां, लक्षण एवं समाधान

✍ **आर. एस. चौहान, अश्वनी कुमार एवं नरेन्द्र सिंह**
कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचकूला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सब्जियों का सेवन शारीरिक संरचना व विकास के लिये बहुत ही आवश्यक है तथा सब्जियों में टमाटर का अपना एक विशेष स्थान है। टमाटर को सब्जियों के राजा की भी संज्ञा दे सकते हैं। संकर किस्मों के आने से प्रति एकड़ उत्पादन में रिकार्ड वृद्धि हुई है। लेकिन कई बार फसल में बीमारियों के प्रकोप के कारण वांछित उत्पादन प्राप्त नहीं होता। इस फसल में कई बीमारियों का प्रकोप होता है। जिनकी किसानों को समय पर पहचान न होने के कारण भारी नुकसान उठाना पड़ता है। उत्पादन में कमी के साथ रोगों की रोकथाम में प्रयोग किए गए अनावश्यक रसायनों के कारण फसल की लागत में भी वृद्धि होती है तथा साथ ही रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग से पर्यावरण पर भी बुरा असर पड़ता है। अत: किसानों को रोगों के लक्षणों की पहचान कर के उचित रसायन और सिफारिशशुदा मात्रा का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। इस लेख में टमाटर की फसल में लगने वाली बीमारियां, उनके लक्षण व रोकथाम के उपायों के बारे में बताया जा रहा है।

आर्द्रगलन रोग : यह पौधशाला (नर्सरी) की बहुत गंभीर बीमारी है। इस रोग के प्रकोप से पौध अंकुरण से पहले और बाद में मर जाती है। यह रोग नर्सरी में गोलाकार आकृति में दिखाई देता है तथा धीरे-धीरे सारी नर्सरी में फैल जाता है तथा पौधे ज़मीन पर गिर जाते हैं।

रोकथाम : इस रोग के प्रबंधन के लिये बीज उपचार अति आवश्यक है। बीज को 2.5 ग्राम एमीसान या कैपटान या थाइरम दवाई से प्रति एक किलो बीज की दर से उपचारित करें। उगने के बाद पौधों को गिरने से बचाने के लिये 0.2 प्रतिशत कैपटान के छिड़काव से नर्सरी को तर करें।

अगेती झुलसा रोग (ब्लाइट) : इस रोग के कारण पत्तों व फलों पर गोल और तिकोने आकार के गहरे-भूरे रंग या काले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। धीरे-2 ये धब्बे अण्डाकार और फिर बेलनाकार बन जाते हैं व पौधे सूख जाते हैं। फलों पर ये धब्बे टहनी की तरफ से शुरू होते हैं।

रोकथाम : बीज उपचार करने के पश्चात् बिजाई करें तथा नर्सरी में पर्याप्त गोबर की गली सड़ी खाद डालें। ज़्यादा सिंचाई भी बीमारी की बढ़ोत्तरी में सहायक है इसलिये कम सिंचाई करें। रोग के प्रारम्भिक लक्षण दिखाई देते ही जीराम या जीनैब या मैन्कोजेब (इण्डोफिल एम-45) की 400 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। उसके बाद 10-15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

पत्ती मरोड़ या मोजैक रोग : इस रोग से पौधों की बढ़वार रुक जाती है। पत्तियां मोटी, भद्दी व मुड़ी हुई हो जाती हैं। तने पर हल्के काले रंग की धारियां बन जाती हैं। फलों का आकार छोटा हो जाता है तथा पौधा मरा हुआ सा हल्का हरे रंग का दिखाई देता है।

रोकथाम : क्योंकि यह रोग रस चूसने वाले कीटों द्वारा फैलता है इसलिये पौधशाला से ही 10-15 दिन के अन्तराल पर 0.2 प्रतिशत मैलाथियान नामक दवा का छिड़काव करें। खेत में रोगी पौधे दिखाई देते ही उखाड़ कर ज़मीन में गहरा दबा दें।

जड़ गांठ रोग : यह रोग सूत्र कृमि (निमाटोड) द्वारा फैलता है। ग्रसित पौधे पीले पड़ जाते हैं तथा उनकी बढ़वार रुक जाती है। पौधों की जड़ो में गांठें बन जाती हैं जिसके कारण पौधे ज़मीन से पोषक तत्व नहीं ले सकते।

रोकथाम : इस रोग की रोकथाम के लिये नर्सरी में कार्बोफ्यूरान दवा को 7 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से मिलाएं। मई व जून में खेतों की गहरी जुताई करें तथा सूत्रकृमि ग्रसित खेत में टमाटर की हिसार ललित किस्म लगाएं।

गन्ने से गुड़ एवं खांडसारी का उत्पादन

✍ **कनिका पंवार एवं रमेश कुमार**
क्षेत्रीय अनुसन्धान केंद्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में गन्ने का प्रयोग चीनी, खांडसारी एवं गुड़ का उत्पादन के लिए किया जाता है। चीनी उत्पादन के लिए देश में उत्पादित कुल गन्ने का लगभग 70 प्रतिशत, खांडसारी तथा गुड़ उत्पादन के लिए 20 प्रतिशत तथा बुवाई एवं चूसने के लिए 5-8 प्रतिशत भाग प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में देश में चीनी का उत्पादन 260 लाख टन तथा गुड़ एवं खांडसारी का उत्पादन 80-90 लाख टन है। बदलते परिवेश एवं जीवन शैली में परिवर्तन के कारण देश में प्रति व्यक्ति गुड़ का उपयोग विगत दशकों में तेज़ी से कम हुआ है किन्तु अभी भी प्रति व्यक्ति एक वर्ष में 5 -6 किलो ग्राम गुड़ का उपयोग होता है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में गुड़ का प्रयोग आज भी प्रचलित है।

गुड़ चीनी से अधिक स्वास्थवर्धक : चीनी की तुलना में गुड़ की उत्पादन लागत कम होने के साथ-साथ गुड़ का प्रयोग स्वास्थवर्धक भी माना जाता है। स्वास्थ्य सजग समय में गुड़ को विदेशों में भेजने से विदेशी मुद्रा भारत में आती है अत: गुड़ में निर्यात क्षमता है। सर्वोत्तम गुणों से युक्त गुड़ के उत्पादन से किसान का अधिक लाभ हो सकता है। गुड़ में खनिज तत्वों जैसे लौह, मैंगनीज़ आदि की अधिकता होती है और इसका मानव शरीर के उपापचय क्रियाओं पर भी लाभकारी प्रभाव देखा गया है। इस प्रकार गुड़ का उत्पादन हमारे जीवन का अभिन्न अंश है एवं इसके लिए गन्ने की लाभकारी खेती की तकनीकों का पर्याप्त ज्ञान भी आवश्यक है जिससे गुड़ बनाने के लिए आवश्यक गन्ने की आपूर्ति सुनिश्चित करें एवं उससे गुड़ का अधिक परता प्राप्त हो जिससे किसान एवं गुड़ उत्पादक दोनों को ही उचित लाभ प्राप्त हो सके।

गुड़ एक ठोस पदार्थ है जो आंशिक रूप से साफ व गाढ़े किये गन्ने के रस से बनता है। उत्तम गुड़ सुनहरे रंग का, दानेदार व मीठा होता है तथा अधिक दिन तक रखा जा सकता है। गुड़ की गुणवत्ता के विभिन्न मापदंड हैं।

भारत की खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (एफ.एस.एस.ए.आई.) द्वारा गुड़ की गुणवत्ता का मापदंड नीचे दी गई तालिका में दिया गया है जो कि इस प्रकार है :

क्र सं	गुणवत्ता के मापदंड	अनुमेय सीमा (%)
1.	सुक्रोस (शर्करा), %, न्यूनतम	70
2.	अवकारक शर्करा %, अधिकतम	20
3.	नमी %, अधिकतम	7.0
4.	पानी अघुलनशील पदार्थ %, अधिकतम	2.0
5.	सुल्फेटेड ऐश %, अधिकतम	4.0
6.	अम्ल अघुलनशील राख %, अधिकतम	0.5

गुड़ उद्योग : भारत में गुड़ उद्योग एक प्रमुख कुटीर उद्योग है। गुड़ बनाते समय रस को मिट्टी पर गरम किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में गुड़ बनाने की देसी भट्टियां प्रचलित हैं। इनकी संरचना अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग होती है। इन भट्टियों में ईंधन की खपत अधिक होती है। किसानों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में दो कड़ाहे एवं तीन कड़ाहे की भट्टियों का विकास किया गया हैं तथा अन्य क्षेत्रों में गुड़ की नई आधुनिक विधि जैसे की वैक्यूम वाष्पीकरण का भी प्रयोग किया जाता है। जिसके द्वारा शुद्ध, साफ व अच्छी गुणवत्ता का गुड़ बनाया जा सकता है।

गुड़ बनाने की विधि के उपयुक्त तरीके : अच्छी गुणवत्ता का गुड़ बनाने के लिए गन्ने के रस की सफाई आवश्यक है। गन्ने के रस की सफाई कई तरीकों से की जाती है जिसमें वानस्पतिक रस शोधक (भिंडी, फालसा, सेमल आदि) व रासायनिक रस शोधकों (हाइड्रोस, चूना, फिटकरी आदि) का प्रयोग किया जाता है। रस को ड्रम में एकत्रित करने के पश्चात् उसको स्थिर होने के लिए रख देना चाहिए ताकि बड़े कण ड्रम की तली में बैठ जायें व ऊपर वाले रस को निकाल लेते हैं। रस को निकालते ही उसको अतिशीघ्र उबालना आवश्यक है ताकि उसमें एंजाइम जल अपघटन को कम किया जा सके व रस की पी एच 6.5 -7.0 हो, यह सुनिश्चित करें। रस को तेज़ी से गरमाना चाहिए ताकि गुड़ का रंग व चमक में सुधार किया जा सके। कोलॉइडल पदार्थों की वजह से गुड़ के रंग पर प्रभाव पड़ता है इसलिए गुड़ की सफाई अच्छे से होनी चाहिए। रस का सान्द्रीकरण तब तक करते रहें जब तक रस का तापमान 116 से 118 डिग्री सेल्सियस तक न पहुंचे। इसके बाद भट्टी में झोकाई बंद कर दें ताकि तापमान 118 डिग्री सेल्सियस से अधिक न हो सके। 116 से 118 डिग्री सेल्सियस तक तापमान रखने से गुड़ सुनहरे पीले रंग का होता है तथा यह गुड़ सुक्रोस की अधिक मात्रा होने के कारण अधिक मीठा और भण्डारण के लिए उपयुक्त होता है।

गुड़ की उपयुक्त पैकेजिंग एवं मार्केटिंग : गुड़ की पैकेजिंग के मूल रूप से दो लाभ हैं सर्वप्रथम यह कि गुड़ की आय में वृद्धि एवं दूसरा इसकी गुणवत्ता में सुधार। गुड़ पैकेजिंग मैटीरियल इस तरह का होना चाहिए जिससे हवा एवं पानी गुड़ तक न पहुंचे ताकि इसका रंग, गंध, आकार और महक सुरक्षित रह सके। कई संस्थानों में गुड़ पैकेजिंग पर कई प्रयोग किये गए हैं जिनमें पॉलिथीन बैग, प्लास्टिक फिल्म, बटर पेपर, हेसयन कपड़ा, एल्युमीनियम पत्ती, मोमयुक्त बॉक्स की कागज़ इत्यादि शामिल हैं। प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि प्लास्टिक फिल्म में रखने से गुड़ की गुणवत्ता काफी हद तक सुरक्षित रहती है।

गुड़ का मूल्य संवर्धन : गुड़ का प्रयोग काफी समय से ही विभिन्न मूल्यवर्धक खाद्य पदार्थ बनाने में किया जा रहा है उसमें रेवड़ी, गज्जक, चिक्की, पट्टी आदि मुख्य हैं। गुड़ के मौसम में और अब तो लगभग हर मौसम में, ये सभी करीब-करीब हर जगह देखे जा रहे हैं। रामदाना, चना, मूंगफली, तिल, लाई आदि का गुड़ के साथ अच्छा मेल बनता है। चना, मूंगफली , तिल, लाई आदि के दाने पूरे या टूटे डाले जा सकते हैं। गेहूँ के आटे के साथ गुड़ को निश्चित अनुपात में मिलाकर एक्सट्रूडर से निकालने पर पके हुए सेव निकाले जा सकते हैं। इस प्रकार से बेसन और सोयाबीन के आटे के साथ भी सेव बनाए जा सकते हैं। गुड़ से चटनी, चॉकलेट व अन्य स्नैक्स भी बनाये जा सकते हैं।

गुड़ एवं खांडसारी उद्योग अव्यवस्थित सैक्टर का एक घरेलू उद्योग है जिसे आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर अच्छा बनाया जा सकता है। इसमें रस की निकासी के तरीकों में बदलाव कर व गुड़ व खांडसारी की परंपरागत प्रक्रिया की जगह आधुनिक प्रक्रिया को इस्तेमाल में ला कर इस उद्योग को बढ़ाया जा सकता है। कई अनुसंधानों ने शोध कर नए तरीकों की खोज की है जिसे किसान अपना कर न केवल अपनी आय को बड़ा सकते हैं साथ ही साथ उत्पाद की गुणवत्ता में भी वृद्धि कर अधिक लाभ कमा सकते हैं। सरकार द्वारा भी इन लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए अनेक योजनाएं व कदम उठाये जा रहे हैं।

अलसीः एक प्राकृतिक औषधि

✍ **अंजनी**

रसायन विज्ञान विभाग

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा प्रदेश में अलसी और इसका तेल खाने में बहुत ही कम इस्तेमाल किया जाता है जबकि यह स्वस्थ शरीर के निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक है। शाकाहारी व्यक्तियों के लिए यह किसी रामबाण से कम नहीं है। सच कहें तो अलसी गुणों की खान है लेकिन लोग इस बात से अंजान हैं। शाकाहारी लोगों के लिए यह ओमेगा-3 फैटी एसिड का बहुत अच्छा स्रोत है। इसमें लगभग 50 प्रतिशत ओमेगा-3 फैटी एसिड, अल्फा-लिनोलिक एसिड के रूप में होता है। हमारा शरीर इसे बना नहीं सकता, इसलिए इसे भोजन के माध्यम से ही लेना पड़ता है। यदि आप नियमित रूप से इसका सेवन करते हैं तो आपको इसके सकारात्मक प्रभाव प्राप्त होंगे। अलसी में ओमेगा-3 के साथ-साथ फाइबर, प्रोटीन, विटामिन बी ग्रुप, मैंगनीज़, मैग्नीशियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस, सेलेनियम और ज़िंक भी पाये जाते हैं। इसलिए अलसी शरीर को स्वस्थ रखती है और साथ -साथ आयु भी बढ़ती है। इन्हीं गुणों के कारण अलसी को उत्तम भोजन भी कहा जाता है। यदि आप स्वयं को स्वस्थ रखना चाहते हैं तो कम से कम दो चम्मच अलसी को अपने भोजन में अवश्य शामिल करें। अलसी की तरह, अलसी के बीजों में विद्यमान ढेर सारा तेल भी अनेक प्रकार की औषधियों का भण्डार है।

अलसी तिलहन फसलों में दूसरी महत्वपूर्ण फसल है। विश्व में अलसी उत्पादन में हमारे देश का तीसरा स्थान है जबकि कनाडा प्रथम स्थान व चीन दूसरे स्थान पर है। भारत में मुख्य रूप से मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, महाराष्ट्र एवं कर्नाटक आदि प्रदेशों में इसकी खेती की जाती है। अलसी के कुल उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत खाद्य तेल के रूप में तथा शेष 80 प्रतिशत तेल औद्योगिक प्रयोग जैसे सूखा तेल, पेंट बनाने में वारनिश, लेमिनेशन, तेल कपड़े चमड़े, स्याही टैपिलोन साबुन तथा दवाइयां बनाने में किया जाता है।

अलसी का तेल शरीर को रोगों से बचाने में अहम भूमिका निभाता है। यह कैल्शियम को शरीर में शोषित करने में मददगार है। आयुर्वेदिक मत के अनुसार अलसी वातनाशक, पित्तनाशक तथा कफ निस्सारक होती है। यह पुरुषों और महिलाओं, दोनों के लिए बहुत लाभकारी है क्योंकि ये बांझपन को दूर कर प्रजनन क्षमता बढ़ाती है। अलसी का प्रयोग निम्नलिखित रोगों को दूर करने में किया जा सकता है :

कर्क रोग निवारक : अलसी का तेल स्तन कैंसर, प्रोस्टेट कैंसर और पेट की कैंसर दूर करने में आपकी रक्षा करता है। अलसी में लिग्नांस होते हैं जो कैंसर से बचाव करते हैं क्योंकि ये हार्मोन के प्रति संवेदनशील होते हैं। लिग्नांस हार्मोन के चयापचय में मौजूद एंजाइमों को अवरुद्ध करके ट्यूमर कोशिकाओं के विकास को रोकते हैं।

कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण : अलसी में मौजूद ओमेगा-3 फैटी एसिड की उच्च सामग्री के कारण यह खराब कोलेस्ट्रोल का स्तर कम कर देता है। वसा रहित होने के कारण अलसी के तेल से बना खाना हृदय संबंधी रोगों से बचाने में सहायक है। इसके अलावा अलसी का तेल एनजाइना व हाइपरटेंशन से भी बचाता है।

गठिया से राहत : अलसी में पाया जाने वाला ओमेगा-3 फैटी एसिड गठिया में सुबह के समय धुटनों या जोडों में होने वाली कठोरता को कम करने में मदद करता है। यह सूजन से भी राहत देता है इसमें मौजूद इस आवश्यक फैटी एसिड से ओस्टियो आर्थराइटिस को ठीक करने में भी मदद मिल सकती है। इसके अलावा अगर आप हर दिन एक चम्मच अलसी के बीज का सेवन करते हैं तो आपको पुराने ऑस्टियो आर्थराइटिस के लक्षणों से राहत प्राप्त करने में मदद मिल सकती है।

स्वस्थ पाचन के लिए : इसमें मौजूद फाइबर पाचन तंत्र को नियमित रखने में सहायक होता है। जिससे कब्ज़ से बचा जा सकता है। हर बीमारी की जड़ हमारा पेट है और पेट को साफ रखने में अलसी का तेल ईसबगोल से भी अधिक प्रभावशाली होता है। पेट से जुड़ी अन्य बीमारियों के उपचार में भी सहायक है।

हृदय को स्वस्थ रखें : अल्फा-लिनोलिक एसिड को हृदय की रक्षा करने वाला कहा जाता है। अलसी का तेल विभिन्न हृदय रोगों को रोक सकता है और हृदय के कार्य को सामान्य करने में मदद करता है। इस तेल का नियमित रूप से सेवन करने से दिल के दौरे की संभावना भी कम हो जाती है। इसके अलावा यह रक्त वाहिकाओं के स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है और दिल की धड़कन तथा रक्तचाप को भी नियंत्रित करता है।

वज़न कम करने में सहायक व मददगार : वज़न घटाने के लिए अलसी के तेल का उपयोग बहुत ही लाभकारी है। इसके सेवन से आपको जल्दी से भूख नहीं लगेगी जिससे आपका पेट पूरा दिन भरा रहेगा। साथ ही ओमेगा-3 और प्रोटीन मांस-पेशियों का विकास कर शरीर को निरोग बनाता है।

मधुमेह का आदर्श आहार : अलसी का तेल मधुमेह को नियंत्रित ही नहीं करता बल्कि इसके दुष्प्रभावों से सुरक्षा और उपचार भी करता है। अलसी में 27 प्रतिशत रेशे होते हैं परन्तु मधुमेह की मात्रा सिर्फ 1.8 प्रतिशत यानि न के बराबर होती है। इसलिए यह शून्य-शर्करा आहार कहलाती है और मधुमेह के लिए आदर्श आहार है। मधुमेह के रोगियों के पैर में घाव हो जाते हैं जो जल्दी भरते नहीं हैं, ऐसी स्थिति में अलसी के तेल की मालिश करने से रक्त संचार सुचारू रूप से होता है एवं घाव भी जल्दी भर जाते हैं।

त्वचा में लाए निखार : अलसी के शक्तिशाली एंटी-ऑक्सीडेंट ओमेगा-3 व लिग्नेन त्वचा के कोलेजन की रक्षा कर त्वचा को आकर्षक, कोमल, नम, बेदाग व गोरा बनाते हैं। अलसी सुरक्षित, स्थाई और उत्कृष्ट भोज्य सौंदर्य प्रसाधन है जो त्वचा में अन्दर से निखार लाता है।

कोशिकाओं में नई ऊर्जा : ओमेगा-3 से भरपूर अलसी के तेल से कमज़ोर कोशिकाओं को भरपूर ऑक्सीजन मिलने लगता है। इसी कारण से यह हमारी कोशिकाओं में नई ऊर्जा भर देता है।

सोच रखे सकारात्मक : अलसी के तेल के सेवन से भुलभुलाहट या क्रोध नहीं आता और मन प्रसन्न रहता है इसलिए ये मील गुड आहार भी कहा जाता है। इसके सेवन से सकारात्मक सोच बनी रहती है और आपके तन, मन तथा आत्मा को शांत और सौम्य कर देती है।

ड्राई-आई सिंड्रोम का इलाज : इस रोग के कारण हमारी आंखों की बाहरी परत को आवश्यकता के अनुसार लुब्रिकेशन नहीं मिल पाता है जिससे आंखों में जलन होती है, अलसी के तेल के प्रयोग से इस रोग के लक्षणों को कम करने में मदद मिलती है।

बालों का विकास : अलसी के तेल में एसिड, विटामिन और खनिज आदि पाए जाते हैं जो आपके बालों को स्वस्थ रखने में मदद करते हैं। इस तेल का नियमित रूप से उपयोग करना बालों के झड़ने को रोकता है। तेल रूसी को खत्म कर बालों में नमी बनाये रखता है जिससे बाल चमकदार रहते हैं।

रजो निवृत्ति से छुटकारा : जब महिलाएं रजो निवृत्ति के दौर से गुज़रती हैं तो उनके शरीर में कई तरह के बदलाव होते हैं विशेष रूप से हार्मोन असंतुलन जैसे एस्ट्रोजन। अलसी के तेल में पाया जाने वाला लिग्नेन हार्मोन

(शेष पृष्ठ 12 पर)

पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका

✍ **कविन्द्र[1], कविता एवं देवराज**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सूक्ष्म पोषक तत्व पौधे की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं और संतुलित फसल पोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें बोरॉन, कॉपर, लौह (आयरन), मैंगनीज़, मोलिब्डेनम, ज़िंक, निकल और क्लोरीन (क्लोराइड) शामिल हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता होती है। मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों में से किसी एक की कमी विकास को सीमित कर सकती है, तब भी जब अन्य सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में मौजूद हों। सूक्ष्म पोषक तत्वों के सामान्य कार्य :

लौह : लौह पोर्फिरिन, फेरेडॉक्सिन अणुओं का एक संरचनात्मक घटक है और क्लोरोफिल के निर्माण में मदद करता है। लौह एंज़ाइम प्रणालियों का एक घटक है और इसलिए यह पौधों में अलग-अलग प्रकिण्वन अभिक्रिया करने में मदद करता है जैसे साइटोक्रोम ऑक्सीडेज़, उत्प्रेरित, पेरोक्सीडेज़, एकोटिनेज़ आदि।

कमी के लक्षण : 1. लौह की कमी क्लोरोफिल उत्पादन को कम करती है लौह की कमी में नीचे की पत्तियाँ हरी तथा नई निकलने वाली पत्तियाँ पीली धारीदार या पूर्णतया पीली हो जाती हैं; 2. जैसे-जैसे कमी विकसित होती है, पूरी पत्ती सफेद-पीली हो जाती है और परिगलन में प्रगति होती है; 3. पौधे की वृद्धि भी धीरे-धीरे होती है। जब दूर से देखा जाता है, तो लौह की कमी वाले क्षेत्र अनियमित आकार के पीले क्षेत्रों का प्रदर्शन करते हैं।

सुधार : 1. लौह की कमियों का सुधार मुख्य रूप से लौह के पर्ण छिड़काव के साथ किया जाता है। खड़ी फसल पर हरा कसीस (0.5 प्रतिशत घोल) का पर्ण छिड़काव करें। पर्ण छिड़काव को 10 -15 दिनों के अंतराल पर दोहराया जाना चाहिए और 2 से 3 छिड़काव अक्सर आवश्यक होते हैं।

मैंगनीज़ : मैंगनीज़ की भूमिका को लोहे के साथ निकटता से जुड़ा हुआ माना जाता है। मैंगनीज़ पौधे में लोहे के प्रवाह का समर्थन करता है। मैंगनीज़ क्लोरोफिल के निर्माण में मदद करता है। मैंगनीज़ ऑक्सीकरण-कमी प्रक्रियाओं और डिकार्बोलाइजेशन और जलविघटन प्रतिक्रियाओं में भी भाग लेता है। साइट्रिक एसिड चक्र में कई प्रकिण्वन अभिक्रियों की अधिकतम गतिविधि के लिए मैंगनीज़ की आवश्यकता होती है।

कमी के लक्षण : 1. पौधे के शीर्ष के पास की छोटी पत्तियां पहले लक्षण दिखाती हैं क्योंकि मैंगनीज अस्थिर नहीं है; 2. युवा पत्तियों में कमी का एक सामान्य लक्षण अंत:शिरा क्लोरोसिस है।

सुधार : 1. मैंगनीज़ सल्फेट के पर्ण छिड़काव को 0.5 प्रतिशत पर लगाएँ और यदि कमी बनी रहे तो छिड़काव को दोहराएं।

तांबा (कॉपर) : कॉपर क्लोरोफिल संश्लेषण के दौरान लोहे के उपयोग में मदद करता है। तांबे की कमी से पौधों के गांठों में लोहा जमा होता है। कॉपर प्लास्टोसिनिन जैसे प्रकिण्वन की संख्या का एक घटक है। कार्बोहाइड्रेट और नाइट्रोजन चयापचय के लिए आवश्यक है।

कमी के लक्षण : 1. तांबे की कमी के पौधे युवा पत्तियों का पीलापन प्रदर्शित करते हैं, विकास में देरी, परिपक्वता में देरी (अनाज की फसलों में अधिक देर तक), मेलेनोसिस (भूरा मलिनकिरण) भी कमी के लक्षण हैं; 2. कॉपर की कमी वाले पौधों में बीमारी होने का खतरा होता हैं।

सुधार : 1. मिट्टी और पत्ते के अनुप्रयोग दोनों प्रभावी हैं। खड़ी फसल में कॉपर सल्फेट (0.2 से 0.5 प्रतिशत) को पर्ण छिड़काव के रूप में लगाते हैं। यदि लक्षण फिर से दिखाई दें तो बार-बार छिड़काव की आवश्यकता होती है।

जस्ता (ज़िंक) : जस्ता संयंत्र में कुछ वृद्धि ग्रन्थिरस (हार्मोन) के गठन को प्रभावित करता है। ज़िंक कुछ पौधों के प्रजनन में सहायक होता है। यह ऑक्टिन चयापचय में शामिल है, जैसे ट्रिप्टोफैन सिंथेटेज़, ट्रिप्टामाइन चयापचय। जस्ता पौधों में फास्फोरस के परिवहन को प्रभावित करता है। कई एंजाइमों का एक घटक है जैसे कार्बोनिक एनहाइड्रेज़, अल्कोहल डिहाइड्रोजनेज़ और सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेज़।

कमी के लक्षण : 1. वृद्धि ग्रन्थिरस (हार्मोन) उत्पादन के लिए पौधों द्वारा जस्ता की आवश्यकता होती है और विशेष रूप से इंटर्नोड (पोरी - जहां से पत्तियां उगती है उन दो गांठों के मध्य के पेड़ के तने का भाग) बढ़ाव के लिए महत्वपूर्ण है। जस्ता संयंत्र में मध्यवर्ती गतिशीलता है और लक्षण शुरू में मध्य पत्तियों में दिखाई देंगे; 2. जस्ते की कमी से प्राय: आरम्भ में नीचे से तीसरी या चौथी पुरानी पत्तियों के मध्य में हल्के पीले रंग के अनियमित धब्बे आ जाते हैं जो कि बाद में बड़े होकर और मिल जाने पर सफेद, पीली व हरी चित्तियों में बदल जाते हैं।

सुधार : 1. ज़िंक की कमी वाले फसल में हर दो साल में आमतौर पर 25-30 किग्रा हैक्टेयर की दर से ज़िंक सल्फेट लगाएं; 2. अंकुरित होने के 2 से 3 सप्ताह बाद खड़ी फसल पर ज़िंक सल्फेट (0.5 प्रतिशत घोल) का छिड़काव करें। यदि कमी बनी रहती है तो छिड़काव को दोहराएं।

बोरॉन : बोरॉन की प्राथमिक भूमिका कैल्शियम चयापचय और कोशिका भित्ति के निर्माण से संबंधित है। पौधों में शर्करा परिवहन, फूल प्रतिधारण और पराग निर्माण और अंकुरण भी बोरान से प्रभावित होते हैं। कम बोरान आपूर्ति से बीज और अनाज का उत्पादन कम हो जाता है।

कमी के लक्षण : 1. बोरॉन कमी के लक्षण पहले बढ़ते बिंदुओं पर दिखाई देते हैं; 2. कोशिका भित्ति में गड़बड़ी के कारण, बोरॉन कमी वाले पौधों की पत्तियां और तने भंगुर हो जाएंगे और विकृत और पत्ती युक्तियां गाढ़ी और रूखी हो जाती हैं। खराब परागण, खोखले तनों और फलों द्धखोखले दिलऋ बोरान की कमी के लक्षण हैं; 3. बोरॉन प्रजनन ऊतकों में जमा हो जाता है, फूल की कलियां बनने में विफल हो सकती हैं।

मोलिब्डेनम : मोलिब्डेनम पौधों में प्रमुख एंजाइम नाइट्रेट रिडक्टेस का एक अनिवार्य घटक है। नाइट्रोजन चयापचय, प्रोटीन संश्लेषण और सल्फर चयापचय भी मोलिब्डेनम से प्रभावित होते हैं। मोलिब्डेनम का पराग निर्माण पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव है, इसलिए मोलिब्डेनम की कमी वाले पौधों में फल और अनाज का गठन प्रभावित होता है।

कमी के लक्षण : 1. पौधे में एंजाइम गतिविधि के लिए और नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए मोलिब्डेनम की आवश्यकता होती है; 2. क्योंकि मोलिब्डेनम की आवश्यकताएं बहुत कम हैं, अधिकांश पौधों की प्रजातियां मोलिब्डेनम की कमी के लक्षणों को प्रदर्शित नहीं करती हैं। मोलिब्डेनम की कमी के अन्य लक्षणों में पीली पत्तियां शामिल हैं, जो झुलस सकती हैं। पत्तियां मोटी या भंगुर भी दिखाई दे सकती हैं,

(शेष पृष्ठ 12 पर)

[1]सस्य विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

पराली प्रबंधन में स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर की महत्ता

✍ **अनिल कुमार, कनिष्क वर्मा एवं राजेश कुमार**
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धान गेहूं हरियाणा का मुख्य फसल चक्र है। हरियाणा में धान का रकबा लगभग 13 लाख हैक्टेयर है जिसमें से लगभग 70 प्रतिशत भाग बासमती व 30 प्रतिशत भाग में नान-बासमती धान लगाई जाती है। धान की कटाई अक्तूबर के अंत व नवंबर के मध्य तक चलती है और यही गेहूं की फसल का बुवाई का समय होता है, इसलिए किसान खेत जल्दी खाली करने के लिए धान की पराली में आग लगा देते हैं। जिससे प्रदूषण तो होता ही है साथ ही खेत की उर्वरा शक्ति भी कम हो जाती है। इस समस्या के समाधान के लिए स्ट्रा चॉपर श्रेडर मशीन एक अच्छा विकल्प है। कंबाइन हार्वेस्टर से धान की कटाई के उपरांत स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर का उपयोग धान के भूसे को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने व खेत में समान रूप से फैलाने के लिए किया जाता है। ट्रैक्टर की लिफ्ट से जुड़ने वाले (माउंटेड टाइप) स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर में रोटरी शाफ्ट के ऊपर ब्लेड लगे होते हैं जो धान के भूसे की कटाई और उसे टुकड़ों में काटने का काम करते हैं। इस शाफ्ट को गति गियर और बेल्ट-पुली के माध्यम से ट्रैक्टर के पी.टी.ओ. से प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त अवतल हिस्से में लगी दांतेदार ब्लेडों की पंक्ति से पराली को काटने में सहायता मिलती है। ट्रैक्टर चालित स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर के खींचने वाले प्रकार (ट्रेल्ड टाइप) में सामान्य रीपर की तरह चार इकाइयां होती हैं, जो पराली को एकत्रित करने, काटने, सिलेंडर में भेजने और छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने का काम करती हैं। इकट्ठा करने वाली इकाई में भूसे को इकट्ठा करने और उन्हें कटर बार में भेजने के लिए एक रील लगी होती है तथा चॉपिंग इकाई में स्ट्रॉ चॉपिंग के लिए सामान्य रीपर की अपेक्षा एक अतिरिक्त सिलेंडर होता है। प्रारंभिक कटर बार खड़ी पराली को काटता है तथा इसकी ऊंचाई को समायोजित करने का प्रावधान भी होता है। इसके पश्चात् फीडर इकाई स्ट्रॉ को काटने के लिए चॉपिंग इकाई में धक्का देती है तथा इस इकाई में सिलेंडर पर लगे ब्लेड स्ट्रॉ को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर सामान रूप से खेत में फैला देते हैं। ये ब्लेड पराली को 5-8 सैं. मी. के छोटे टुकड़ों में काट कर खेत में समान रूप से फैला देते हैं। जिससे खेत तैयार करने व गेहूं की सीधी बिजाई में कोई परेशानी नहीं आती है।

तालिका 1: स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर की तकनीकी विशेषताएं

श्रेडर का प्रकार	ट्रैक्टर पी.टी.ओ. चालित	
	माऊन्टेड टाईप	ट्रेल्ड टाईप
शक्ति का स्त्रोत (हॉर्सपावर)	45	55
चौड़ाई (सैं.मी.)	150	180
फ्लेल रोटर की गति (आर.पी.एम.)	1400-1500	900-1000
फ्लेल की कतारों की संख्या	2-4	4
प्रत्येक कतार में फ्लेल की संख्या	14-20	5
फ्लेल का आकार	इनवर्टेड गामा टाइप	फ्लेट बार टाइप
सिलेन्डर का व्यास	60	छोटा सिलेण्डर-40/25
सिलेन्डर पर दांतेदार ब्लेड की कतारों की संख्या	-	बड़ा सिलेण्डर-80/57
कनकेव पर दांतेदार ब्लेड की कतारों की संख्या	2-3	छोटा सिलेण्डर-14/10
प्रत्येक कतार में ब्लेड की संख्या	17-21	बड़ा सिलेण्डर-6/6

स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर के लाभ:

अगली फसल की बुवाई से पहले किसानों को धान की पराली जलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

मिट्टी की सतह पर उपस्थित अवशेष एक मल्च के रूप में काम करके नमी को बचाने में सहायक हैं।

अवशेष समय के साथ गल-सड़ कर मिट्टी में जैविक तत्वों को बढ़ाने, पोषक तत्वों को बनाए रखने व मिट्टी की संरचना को सुधारने में भी मदद करते हैं।

इस मशीन से काटे गए अवशेषों को रिवर्सिबल प्लाऊ, रोटावेटर आदि का उपयोग करके आसानी से मिट्टी में दबाया जा सकता है।

स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर का व्यापक उपयोग प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण में मददगार है।

यह सामान्य कंबाइन के उपयोग के पूरक के रूप में काम करता है।

अनुमानित कीमत : स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर के आकार के अनुसार इसकी कीमत लगभग 1.35 से 2.80 लाख रुपये है।

अनुदान राशि (सब्सिडी) :

माउंटेड टाइप स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर :

5 फीट चौड़ा : कीमत का 50 प्रतिशत व अधिकतम 67,200 रुपये।

6 फीट चौड़ा : कीमत का 50 प्रतिशत व अधिकतम 72,800 रुपये

7 फीट चौड़ा : कीमत का 50 प्रतिशत व अधिकतम 78,400 रुपये

8 फीट चौड़ा : कीमत का 50 प्रतिशत व अधिकतम 84,000 रुपये

ट्रेल्ड टाइप स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर :

कीमत का 50 प्रतिशत व अधिकतम 1,26,000 रुपये

कॉम्बो टाइप स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर :

कीमत का 50 प्रतिशत व अधिकतम 1,40,000 रुपये

तालिका 2 : स्ट्रॉ चॉपर श्रेडर के निर्माताओं की सूची

क्र.	फर्म का नाम तथा पता	नाम तथा दूरभाष नं.
1.	गुरुनानक एग्री. इंजीनियरिंग वर्क्स हंडिया-148107, ज़िला-बरनाला	श्री बलकार सिंह 9815261331, 9055022222
2.	दसमेश मैकेनिकल वर्क्स नाभा-मलेरकोटला रोड़, अमरगढ़, पंजाब-148018	श्री सरबजीत सिंह 9216272149 01675-284221
3.	टेफे (ट्रैक्टर - फार्म इक्यूप्मेंट्स लिमिटेड) हुजूर गार्डन्स सेंबियम, चेन्नई-600011	श्री रवीन जोसफ 8754575842, 04466923500
4.	विश्वकर्मा एग्रो इंडस्ट्रीज़ कादिला रोड़, दिरबा मंडी-148035 ज़िला संगरूर, पंजाब	श्री अमरजीत सिंह 01676242122 9216241022
5.	अवतार मैकेनिकल वर्क्स रेलवे रोड़, तलवंडी भाई 142050, ज़िला-फिरोज़पुर (पंजाब)	01632-230424

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं : **haryanakhetihau@gmail.com**

धान-गेहूं फसल चक्र : हरी खाद का महत्व

✍ **हरेन्द्र, कविता[1] एवं कविन्द्र**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धान-गेहूं जैसे सघन व भूमि का अत्यधिक शोषण करने वाले फसल चक्र अपनाने से न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति घटती है, बल्कि उस के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर भी दुष्प्रभाव पडता है। इसमें भूमि का कार्बनिक अंश लगातार कम होता जाता है। ऐसी अवस्था में भूमि की उत्पादन क्षमता को बनाये रखने के लिये विभिन्न जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद व हरी खाद आदि का प्रयोग में लाना आवश्यक हो जाता है। जैविक खाद मिट्टी में कार्बनिक अंश बढ़ाने के साथ-साथ उसके भौतिक व रासायनिक गुणों में भी सुधार करती है। गेहूं-धान फसल चक्र वाले सिंचित क्षेत्रों में हरी खाद का उपयोग कारगर साबित हो सकता है।

हरी खाद उस फसल को कहते हैं जिसकी खेती भूमि में पोषक तत्वों को बढ़ाने तथा जैविक पदार्थों की पूर्ति के उद्देश्य से की जाती है। गेहूं-धान फसल चक्र के लिये हरी खाद में मूंग व ढैंचा उत्तम फसल है। अन्य हरी खाद फसलों में सनई, लोबिया, उड़द व ग्वार भी शामिल है। हरी खाद वाली फसलें वायु मण्डलीय नत्रजन का योगीकरण करके मिट्टी की नत्रजन मात्रा में काफी वृद्धि करके भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाती है। बिना गले-सड़े पौधे व उनके भाग को जब खेत में दबाया जाता है तो इस क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं।

भूमि की तैयारी व बिजाई : गेहूं की कटाई के बाद खेत की जुताई करके समतल करें। फिर खेत में पानी लगाकर पलाव कर दें। फसल की बुवाई करते समय खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। ढैंचा की हरी खाद के लिए 60 किलो बीज प्रति हैक्टेयर तथा मूंग के लिये 15-20 किलो बीज एक हैक्टेयर के लिये पर्याप्त है। इस तरह ढैंचा 45 दिन में 20-25 टन हरा पदार्थ तथा मूंग 10-12 टन हरा पदार्थ पैदा करता है। हरी खाद के लिऐ ढैंचा की उत्तम किस्मों में हिसार ढैंचा 1 व पंत ढैंचा 1 शामिल हैं।

उर्वरक प्रबन्ध : जिस भूमि की उपजाऊ शक्ति कम है वहां हरी खाद की फसल को कम समय में अधिक पैदावार के लिये 25-30 किलो नाइट्रोजन दलहनी फसलों में व गैर दलहनी फसलों में 45-50 किलो ग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर डालने से काफी लाभ होता है। यद्यपि हरी खाद की उर्वरक आवश्यकता बहुत कम मात्रा में होती है परन्तु फसल को शीघ्र बढाने के लिये 50-60 किलो ग्राम फास्फोरस पर्याप्त है। हरी खाद में प्रयोग किऐ जाने वाली दलहनी फसलों में भूमि में सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए विशिष्ट राइजोबियम कल्चर का टीका लगाना उपयोगी होता है।

सिंचाई : ग्रीष्म कालीन फसल के लिए पलेवा सहित 3 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। आवश्यकता पड़ने पर 10-15 दिन के अतंराल पर हल्की सिंचाई कर दें। खरीफ में वर्षा की मात्रा के अनुसार 1-2 सिंचाई पर्याप्त है। यदि ढैंचा की बिजाई खड़े पानी में की गई हो तो पहली और दूसरी सिंचाई जल्दी लगानी पड़ेगी।

हरी खाद को भूमि में दबाना : ढैंचा की फसल भूमि में दबाने के लिए साधारणत: 45-50 दिनों में तैयार हो जाती है। खड़ी फसल में पाटा चलाकर फसल को दबाया जा सकता है परंतु रोटोवेटर की उपलब्धता से यह कार्य अधिक बेहतर किया जा सकता है क्योंकि रोटावेटर फसल को छोटे-छोटे टुकड़ो में काट कर मिट्टी में मिलाता है। मूँग की फसल में फलियों के पकने पर उन्हें तोड़कर भी शेष पौधे को मिट्टी में मिलाया जा सकता है। इस तरह से अतिरिक्त आय भी प्राप्त की जा सकती है।

पौधों को मिट्टी में पलटने के बाद 8-10 दिन तक 4-6 सैं.मी. पानी भरा रहना चाहिए जिसमें पौधों के अपघटन में सुविधा होती है। अपघटन की प्रक्रिया को तेज़ करने के लिए 20-25 किलो ग्राम नाइट्रोजन का उपयोग भी किया जा सकता है।

हरी खाद के लाभ :

हरी खाद के प्रयोग से जीवांश पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है।

हरी खाद की जड़ ग्रंथियों में जीवाणुओं द्वारा मिट्टी में नाइट्रोजन की वृद्धि होती है।

ढैंचा की फसल एक हैक्टेयर में लगभग 80-100 किलो ग्राम नाइट्रोजन की आपूर्ति कर सकती है तथा मूंग द्वारा संचित की गई मात्रा 30-40 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर हो सकती है।

हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी के कटाव को रोका जा सकता है।

हरी खाद मिट्टी की भौतिक संरचना में सुधार करती है तथा जल धारण क्षमता भी बढ़ाती है।

सावधानियां :

हरी खाद को अधिकतम 45-60 दिनों में मिट्टी में मिला दें।

हरी खाद को भूमि में मिलाने के लिए फूल आने से पहले की अवस्था सर्वोत्तम होती है।

फसल को मिट्टी में दबाने के बाद उचित नमी बनाए रखें।

हरी खाद के लिए फसल का चयन मृदा व जलवायु को ध्यान में रख कर करें।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

[1]मृदा विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

वर्टिकल फार्मिंगः आधुनिक कृषि तकनीक

✍ **सुशील कुमार, संदीप भाकर एवं प्रीति यादव**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्टिकल फार्मिंग में खेत समतल ज़मीन पर न होकर बहुमंज़िली इमारतों पर होती है। इसे बहुमंज़िला ग्रीनहाऊस भी कहते हैं। इसमें बहुमंज़िली इमारत पर नियंत्रित स्थितियों में फल-सब्जियां व फूल उगाए जाते हैं। इमारत में रैकों के ऊपर पौधे उगाए जाते हैं। इन रैकों का प्रबंध बहुत ही योजनाबद्ध तरीके से किया जाता है।

सामान्य भाषा में इसे खड़ी खेती भी कह सकते हैं। इस तकनीक के द्वारा इमारतों व अपार्टमेंट की दीवारों का उपयोग भी छोटी-छोटी फसल उगाने के लिए किया जाता है। वर्टिकल फार्मिंग एक मल्टीलेवल प्रणाली है। इसके तहत कमरों में एक बहु-सतही ढांचा खडा किया जाता है। यह कमरे की ऊंचाई के बराबर भी हो सकता है। वर्टिकल ढांचे के सबसे निचले खाने में पानी से भरा टैंक रख दिया जाता है। टैंक के ऊपरी खानों में पौधों के छोटे-छोटे गमले रखे जाते हैं। उन गमलों में हम लेट्यूस, टमाटर, मिर्च, गोभी, हरी पत्तेदार सब्जी उगा सकते हैं। पंप के जरिए इन तक काफी कम मात्रा में पानी पहुंचाया जाता है। इस पानी में पोषक तत्व पहले ही मिला दिए जाते हैं। इससे पौधे जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। सूर्य के प्रकाश से प्राप्त प्राकृतिक रोशनी या एलईडी बल्बों से कमरे में कृत्रिम प्रकाश उत्पन्न किया जाता है। इस प्रणाली में मृदा की आवश्यकता नहीं होती। इस तरह उगाई गई सब्जियां और फल खेतों की तुलना में अधिक पोषक और ताज़े होते हैं। छत पर खेती करने के लिए तापमान को नियंत्रित करना पड़ता है।

वर्टिकल फार्मिंग के लाभ

- बड़े पैमाने पर अगर यह खेती होगी तो खाने-पीने के सामान का दाम भी कम हो सकता है।
- साल भर आलू, टमाटरऔर पत्तेदार, सब्जियां आदि उगाई जा सकती हैं।
- परिवहन का खर्चा कम हो सकता है।
- एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2050 तक दुनिया की 80 प्रतिशत आबादी शहरों में रहने लगेगी।अत: वर्टिकल फार्मिंग एक तरीके से भविष्य की तैयारी होगी।
- ज़्यादा शहरीकरण की वजह से बढ़ते प्रदूषण को कम करने में यह तकनीक कारगर साबित होगी।
- इससे पौधों में होने वाले रोग और कीट कम हो जाएंगे, जिससे कीटनाशकों का इस्तेमाल कम हो जाएगा।
- इसका फायदा हमारी सेहत और पर्यावरण को होगा।
- काफी हद तक खाद्य संकट भी खत्म हो जाएगा, क्योंकि इसमें अनाज और सब्जियां शहरों में इमारतों के ऊपर ही पैदा की जा सकती हैं।
- वर्टिकल फार्मिंग में पारंपरिक तरीकों की तुलना में 10 गुना कम पानीऔर 100 गुना कम भूमि का उपयोग होता है।
- खेती के पारंपरिक तरीकों को छोडकर वर्टिकल फार्मिंग के प्रयोग से कम लागत के साथ-साथ कम समय मेंअच्छी पैदावार और अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है।
- जहां पैदावार की खपत हो, उसी के आसपास वर्टिकल फार्मिंग की जा सकती है, ताकि उपभोक्ता को लंबी दूरी से परिवहन की ज़रूरत न हो।
- यह खेती देखने में भी आकर्षक लगती है और सिंचाई के पानी के लिए रेनवॉटर हार्वेस्टिंग हो जाती है।
- इस तकनीक के द्वारा रोगमुक्त पौध तैयार कर सकते हैं।

वर्टिकल फार्मिंग के समर्थकों का कहना है कि वर्टिकल खेत दुनिया में खाद्य आपूर्ति को अधिक सुरक्षित बना सकते हैं। इन पर मौसम की अनिश्चितताओं का कोई असर नहीं होगा। प्रतिकूल मौसमी परिस्थितियों में भी ज़रूरत की फसलें उगती रहेंगी। यदि किसान हानिकारक कीटों से थोड़ी-सी सावधानी बरतें तो वर्टिकल फार्मिंग में कीटनाशकों की आवश्यकता नहीं रहेगी। ऐसे खेतों में सामान्य खेतों की तुलना में पानी की खपत भी कम होती है। इस तरह यह खेती बदलती जलवायु के दोनों जैविक एवं अजैविक घटकों के विरुद्ध लड़कर हमें उच्चतम पैदावार प्राप्त करने में मदद कर सकती है।

आबादी बढ़ने के साथ कम होती कृषि योग्य भूमि को देखते हुए हमारे देश में भी वर्टिकल खेती पर विभिन्न शोध किए जा रहे हैं। अभी भारत में यह तकनीक सिर्फ ज़्यादा आय वाली फसलों तक ही सीमित है। खास बात यह है कि इसमें रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं का उपयोग नहीं होता। यानी उत्पाद पूरी तरह ऑर्गेनिक होता है। इस तकनीक से आम लोग अपनी छतों पर भी अपने उपयोग लायक सब्जियां पैदा कर सकेंगे।यहां टमाटर, मिर्च, फूलगोभी, ब्रोकली, चीनी कैबेज, पोकचाई, बेसिल, रेड कैबेज का उत्पादन किया जा रहा है।आने वाले समय में पूरे पश्चिमी भारत में कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए यह शोध कारगर साबित हो सकता है।

(पृष्ठ 8 का शेष)

को संतुलित रखता है और रजोनिवृत्ति के बाद भी महिलाएं बेहतर कार्य कर सकती हैं। यह शरीर में एस्ट्रोजन के स्तर को भी सामान्य रखने में मदद करता है।

विषाक्त पदार्थों की मुक्ति के लिए : अपने शरीर का डिटोक्सिफिकेशन करने का मुख्य उद्देश्य विषाक्त पदार्थों, कोलेस्ट्रॉल और अन्य अपशिष्ट उत्पादों को लिवर से निष्कासित करना है। अलसी में मौजूद घुलनशील और अघुलनशील फाइबर आंत पथ से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने में बहुत उपयोगी हैं। इसके अलावा अलसी में आवश्यक फैटी एसिड, विशेष रूप से ओमेगा-3 फैटी एसिड शामिल हैं जो विषाक्त पदार्थों की सफाई के लिए आवश्यक और एक स्वस्थ प्रति रक्षा प्रणाली बनाए रखने में सहायक हैं। इसके सेवन से यकीन, कमज़ोरी, सूजन और रक्त संकुलन से पीड़ित होने की संभालना कम हो जाती है।

(पृष्ठ 9 का शेष)

और अंतत: सभी पत्तियां मुरझा जाएंगी, केवल मध्य शिरा को छोड़कर।

निकेल : निकेल नाइट्रोजन चयापचय में जुड़ा हुआ है। यह बीज या अनाज को पोषक तत्वों के परिवहन की सुविधा देता है।

कमी के लक्षण : 1. निकेल की कमी आमतौर पर पौधों की पुरानी पत्तियों में लक्षण प्रदर्शित करेगी क्योंकि निकेल एक अस्थिर तत्व है। शुष्क पदार्थ के वजन में कमी, अमीनो एसिड की मात्रा और नाइट्रेट का संचय में कमी।

क्लोरीन : क्योंकि क्लोराइड पौधों में एक अस्थिर आयन है, यह ओस्मोरगुलेशन (सेल बढ़ाव, स्टोमेटल ओपनिंग) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बहुतायत में क्लोरीन पौधों की बीमारियों को दबा देता है।

कमी के लक्षण :1. क्लोरीन की कमी के लक्षण (जिसमें पत्तों का झुलसना, लीफलेट और क्लोरोसिस का कर्लिंग) मोलिब्डेनम की कमी के समान हैं। अत्यधिक शाखाओं वाली जड़ प्रणाली मुख्य क्लोराइड-कमी के लक्षण हैं, जो मुख्य रूप से अनाज की फसलों में पाए जाते हैं।

जनवरी मास के कृषि कार्य

फसलों में

गेहूं तथा जौ

समय पर बीजी गई फसल की सिंचाई करें। यदि 4 सिंचाइयां उपलब्ध हों तो पहली सिंचाई बोने के 22 दिन बाद (शिखर जड़ें बनते समय), देसी किस्मों में 30-35 दिन बाद, बौनी किस्मों में दूसरी सिंचाई 45 दिन के बाद (फुटाव पूरा होने के समय), तीसरी 85 दिन के बाद (बालियां निकलते समय) और चौथी 105 दिन के बाद करें। पहली सिंचाई को समय पर करना अति आवश्यक है। गेहूं की पछेती बिजाई करने की अवस्था में पहली सिंचाई लगभग 28-30 दिन तक की जा सकती है।

खरपतवारों की रोकथाम हेतु फसल की शुरू की बढ़वार में लगभग 30 दिन के अन्दर ही एक बार निराई-गुड़ाई करें। यदि खरपतवारों की रोकथाम शाकनाशकों द्वारा करनी हो तो चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की रोकथाम के लिए 2,4-डी का प्रयोग करें। इसके लिए 250 ग्राम 2,4-डी (सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत) को या 300 मि.ली. 2,4-डी (एस्टर 34.6 प्रतिशत) या एलग्रीप 8 ग्राम को 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ में छिड़काव करें। गेहूं में मालवा, जंगली पालक, हिरणखुरी व अन्य चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु कारफेन्ट्राजोन ईथाईल (एफीनिटी) 40% डी. एफ. की 20 ग्राम प्रति एकड़ या सभी प्रकार के चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण हेतु ऐली एक्सप्रैस 50% डी.एफ. (मैटसल्फ्यूरॉन 10%+कारफेन्ट्राजोन 40% मिश्रण) की 20 ग्राम मात्रा प्रति एकड़+0.2% सहायक पदार्थ के हिसाब से 200-250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। यह छिड़काव बौनी किस्मों में बिजाई के लगभग 30-35 दिन बाद व देसी किस्मों में बिजाई के 40-45 दिन बाद (जब पौधों में 3-6 पत्तियां बन जाएं) करना चाहिए। ध्यान रखें 2,4-डी का प्रयोग गेहूं की डब्ल्यू एच-283 किस्म में तथा मिलवां गेहूं के साथ चना, सरसों आदि की फसल में न करें।

मंडूसी या कनकी व जंगली जई का नियंत्रण

आईसोप्रोटूरान 50% घु.पा. (टोलकान, टारस, ग्रेमिनान, नोसीलोन, रक्षक, हैक्सामार, इफ्को, आईसोप्रोटूरान, एग्रीलान, मिलरोन) गेहूं की बिजाई के 30-35 दिन बाद 800 ग्राम दवा का प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

या

आईसोप्रोटूरान 75% घु.पा. (एरिलोन, डैलरान, हिप्रोटूरान, नोसीलान, एगरोन, रक्षक) गेहूं की बिजाई के 30-35 दिन बाद 500 ग्राम दवा का प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। ऐसे क्षेत्रों में जहां पर कनकी में आईसोप्रोटूरान प्रतिरोधकता नहीं आई है, वहां आईसोप्रोटूरान 75% (डी.ई. नोसिल) का प्रयोग लाभदायक है। प्रतिरोधकता वाले क्षेत्र में आइसोप्रोटूरान का प्रयोग बंद कर दिया गया है।

या

आईसोप्रोटूरान-सहायक पदार्थ-सेलवेट (टेन्क मिक्स): आईसोप्रोटूरान वर्गीय खरपतवारनाशक की 3/4 सिफारिश की गई मात्रा को 250 लीटर पानी में नान-आयोनिक सहायक पदार्थ (सेलवेट) के 0.1% के छिड़काव घोल में मिलाकर बिजाई के 30-35 दिन बाद छिड़कें। बाज़ार में अन्य उपलब्ध सहायक पदार्थ टी पॉल व सैलविट हैं।

गेहूं की बिजाई यदि दिसम्बर के प्रथम सप्ताह या बाद में हो तो आईसोप्रोटूरान 200 ग्राम प्रति एकड़ पहली सिंचाई के तुरंत पहले करने से जंगली जई, कनकी व बथुआ का नियंत्रण हो जाता है।

धान-गेहूं फसल-चक्र वाले क्षेत्रों में जहां 10-15 वर्षों से आईसोप्रोटूरान का प्रयोग किया गया है वहां कनकी में इस खरपतवारनाशक के विरुद्ध प्रतिरोधकता आ गई है। अत: प्रतिरोधकता से प्रभावित इलाकों में आईसोप्रोटूरान की बजाय निम्नलिखित में से किसी एक खरपतवारनाशक का प्रयोग करना ज़्यादा उचित रहेगा :

- क्लोडीनाफोप (टोपिक या मुल्ला या प्वाइंट या रक्षक प्लस या जय विजय या टोपल) 15% घु.पा. 160 ग्राम प्रति एकड़ बिजाई के 30-35 दिन बाद; या
- सल्फोसल्फ्यूरान (लीडर, सफल-75 या एस एफ-10) 75% घु.पा. 13 ग्राम प्रति एकड़ + 500 मि.ली. पृष्ठ सक्रिय क्रमक/चिपचिपा या सहायक पदार्थ बिजाई के 30 से 35 दिन बाद

या

- फीनोक्साप्रोप (पूमा सुपर) 10% ई.सी. 480 मि.ली. या

तकनीकी सहायता :

एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
अश्वनी कुमार, संकाय सलाहकार (बागवानी)
तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
वी. एस. हुड्डा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फीनोक्साप्रोप (पूमा पावर) 400 ग्राम+200 ग्राम सहायक पदार्थ प्रति एकड़ बिजाई के 30 से 35 दिन बाद।

या

- पीनोक्साडैन (एक्सियल) 5 प्रतिशत ई.सी. 400 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ बिजाई के 30-35 दिन बाद।

कनकी प्रतिरोधकता वाले क्षेत्रों में मिले जुले (चौड़ी व संकरी पत्ती वाले) खरपतवारों के नियंत्रण हेतु पीनोक्साडेन (एक्सियल) या क्लोडीनाफोप (टोपिक या मुल्ला या प्वाइंट या जयविजय) फिनोक्सोप्रोप (पूमा सुपर या पूमा पावर) की ऊपर सिफारिश की गई मात्रा का बिजाई के 30-35 दिन बाद छिड़काव करें तथा इसके एक सप्ताह बाद 2,4-डी या मैटसल्फ्यूरान (एल्ग्रीप) या कारफेन्ट्राजोन (ऐफीनीटी) या ऐलीएक्सप्रैस की सिफारिश की हुई मात्रा का छिड़काव करें। उपर्युक्त रसायनों को मिलाकर छिड़काव न करें।

गेहूं में मिले-जुले खरपतवारों (चौड़ी व संकरी पत्तियों वाले) विशेषकर आइसोप्रोट्यूरान-प्रतिरोधी क्षेत्रों में टोटल (सल्फोसल्फ्यूरान+ मैटासल्फ्यूरान, रेडीमिक्स सहायक पदार्थ सहित) की 16 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ या एटलांटिस (मिजोसल्फ्यूरान + आयडोसल्फ्यूरान सहायक पदार्थ सहित तैयार मिश्रण) की 160 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ या वेस्टा (क्लोडिनाफोप + मैटसल्फ्यूरान, रेडीमिक्स) की 160 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से प्रयोग करें। ध्यान रहे कि जिन खेतों में गेहूं के बाद ज्वार या मक्की की फसल लेनी हो उन खेतों में लीडर, टोटल व एटलांटिस का छिड़काव न करें।

उपर्युक्त में से किसी एक शाकनाशक दवा का 200-250 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

यदि गेहूं दालों के बाद या परती छोडने के बाद बोई जाए तब नाइट्रोजन की मात्रा 25% घटाएं। हल्की मिट्टी में यूरिया को सिंचाई के बाद बत्तर आने पर डालें व गोड़ाई करके मिला दें।

समय से बोई गई पछेती किस्मों में भी पहला पानी लगाते समय 60 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ अवश्य डालें। यदि मिट्टी ज़्यादा रेतीली है तो ऊपर बताई गई नाइट्रोजन वाली खादों को दो बार में डालें - आधी मात्रा पहला पानी लगाते समय और शेष आधी मात्रा दूसरा पानी लगाते समय छिड़कें। खाद डालने के बाद गोड़ी अवश्य करें। हल्की ज़मीन में खाद सिंचाई के बाद और भारी ज़मीन में सिंचाई से पहले डालें।

गेहूं में ज़िंक की कमी के लक्षण 25-30 दिन बाद नज़र आने लगते हैं। जस्ते की कमी में गेहूं के पत्तों पर झुलसे रंग की (जैसा कि लोहे पर ज़ंग या ज़र लगने से होता है) बारीक लाइनें या धब्बे दिखाई देंगे। यदि जस्ते की कमी पूरी न की जाए तो ये धब्बे बढ़कर सभी पत्तों को झुलसे रंग का कर देंगे। अत: इसका उपचार जल्दी करना चाहिए अन्यथा पैदावार में काफी कमी हो जाएगी।

अगर फसल में सिर्फ जस्ते की कमी है और आम पीलापन नहीं है (जोकि नाइट्रोजन की कमी से आता है) तो एक एकड़ खेत के लिए एक किलोग्राम ज़िंक सल्फेट व आधा किलोग्राम चूना (बुझा हुआ) 200 लीटर पानी में घोल लें। घोल को अच्छी तरह मिला कर मलमल के कपड़े में से छान लें, ताकि चूने की गांठें कपड़े पर ही रह जाएं। ऐसा न करने पर पम्प की नोज़ल रुक जाती है। इस घोल का दोपहर बाद जब ओस न रहे, आसमान साफ हो तथा तेज़ हवा न चल रही हो तब मानव चालित पम्प द्वारा पत्तों पर छिड़काव करें। 10-15 दिन के बाद यह छिड़काव दोबारा करें। इस तरह कुल तीन छिड़काव जस्ते की कमी को पूरा करने के लिए पर्याप्त होंगे।

अगर जस्ते की कमी के साथ-साथ फसल में आम पीलापन भी है तो एक एकड़ खेत के लिए एक किलोग्राम ज़िंक सल्फेट तथा 5 किलोग्राम यूरिया को 200 लीटर पानी में घोल लें और जैसा कि ऊपर बताया गया है उस घोल का फसल पर छिड़काव करें। इससे भी 10-15 दिन के अन्तर पर 3 छिड़काव करने से जस्ते और नाइट्रोजन की कुछ कमी को पूरा कर सकते हैं।

सिंचित इलाकों में जौ की फसल में पहला पानी लगाते समय 25 किलोग्राम यूरिया खाद का प्रयोग करें।

गेहूं में पीला रतुआ या रोली के प्रभाव से पत्तियों पर पीले या नारंगी रंग के फफोले बनने लगते हैं। इनसे बचाव के लिए लक्षण दिखते ही 800 ग्राम ज़िनेब या मैन्कोज़ेब या 200 मि.ली. प्रोपिकोनाज़ोल को 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें और 10-15 दिन की अवधि पर दोहराते रहें।

जौ में पीला रतुआ से बचाव के लिए लक्षण दिखते ही 800 ग्राम जिनेब या मैन्कोज़ेब को 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़कें व आवश्यकतानुसार 10-15 दिन की अवधि पर दोहराएं।

इस महीने गेहूं व जौ की फसलों में चेपा (अल) का आक्रमण हो सकता है। इस कीट के बच्चे व प्रौढ़ पत्तों से रस चूसकर पौधों को कमज़ोर कर देते हैं। अधिक आक्रमण होने पर 250 मि.ली. फैनिट्रोथियान (फोलिथियान/सुमिथियान) 50 ई.सी. या 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई. सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

गन्ना

गन्ने की फसल को पाले से बचाने के लिए खेत में पानी लगाएं। गन्ने की मध्य मौसमी किस्मों की कटाई पूरी कर लें। फरवरी-मार्च में बोई जाने वाली गन्ने की फसल के लिए खेत में प्रति एकड़ 20-30 गाड़ी गली-सड़ी गोबर की खाद डालकर उसकी 4 से 5 बार जुताई करें।

जिस भूमि में किसान नया गन्ना लगाना चाहते हैं, उस भूमि के मिट्टी के नमूने अवश्य लें और अपनी निकटतम मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं में भेजकर उनकी जांच करवा लें ताकि इस नमूने के नतीजे आपके पास-गन्ना बीजने से पहले प्राप्त हो जाएं और उसी आधार पर खाद की मात्रा निर्धारित करें।

जहां भी स्केल कीट का आक्रमण हुआ है, ऐसी फसल की कटाई शीघ्र करें तथा बची हुई पत्तियों व ठूंठों को तुरंत जला दें। ऐसी फसल की

मोढ़ी न लें। लाल सड़न, कटुआ या कांगियारी से प्रभावित खेतों में भी मोढ़ी न लें। दीमक और कनसुआ के लिए क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. का प्रबन्ध अभी से करें।

तोरिया, सरसों, राया व अलसी

तोरिया की फसल की कटाई करके, धूप में सुखाकर गहाई करें। दानों को धूप में अच्छी तरह सुखाकर बोरों में डालें। बाकी फसलों में फूल एवं फलियां लगते समय सिंचाई अवश्य करें।

सरसों की फसल को स्कलैरोटीनियां गलन से बचाने के लिए कार्बेण्डाज़िम नामक दवाई का दूसरा छिड़काव (यदि नहीं किया है) 200 ग्राम दवाई 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ करें। सफेद रतुआ या डाऊनी मिल्ड्यू राया के अत्यंत घातक रोग रहे हैं। समय से बचाव के साधन अपनाकर रोगों से बचा जा सकता है। बचाव के लिए 600 ग्राम जिनेब या मैन्कोज़ेब का 250-300 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें और आवश्यकतानुसार 15 दिन की अवधि पर दोहराएं। इन दवाओं को चेपा या अल के नियंत्रण के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली कीटनाशक दवाओं में मिलाया जा सकता है। फफूंदनाशकों की नियंत्रण क्षमता बढ़ाने के लिए प्रति 100 लीटर घोल में 10 ग्राम सेल्वेट-99 या 50 मि.ली. ट्राइटान अवश्य मिला दें।

सरसों, राया व पछेती बिजाई किए तोरिये पर चेपा का आक्रमण हो सकता है। ये कीट (बच्चे व प्रौढ़) समूहों में पौधे के ऊपरी सभी भागों का रस चूसकर बहुत हानि करते हैं। यदि 10% पुष्पित पौधों पर औसतन प्रति पौधा 13 कीट हों तब इनकी रोकथाम के लिए 250-400 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. को 250 से 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कीटनाशक की मात्रा फसल की बढ़वार पर निर्भर करती है। ज़रूरत पडने पर 15 दिन बाद यही छिड़काव दोहराएं। साग वाली फसल पर 250 से 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. प्रति एकड़ छिड़कें। इन्हीं कीटनाशकों से पत्तों में सुरंग बनाने वाला कीट भी मर जाता है। अच्छा रहे मधुमक्खियों को बचाने के लिए छिड़काव दिन के 2 बजे के बाद करें। यदि चेपा का आक्रमण शुरू ही हुआ हो तो खेतों के चारों ओर कुछ खूड़ों की फसल पर ही कीटनाशक छिड़क कर इस कीट को नियंत्रित किया जा सकता है।

चना व मसर

जहां सिंचाई के साधन हों वहां पर बिजाई के 45-60 दिन बाद एक सिंचाई करनी लाभदायक होगी। हरियाणा चना नं. 1 की पछेती बिजाई दिसम्बर के पहले पखवाड़े तक पूरी करें।

सूरजमुखी

जिन क्षेत्रों में सूरजमुखी के बाद कपास की फसल लेनी हो वहां पर सूरजमुखी की बिजाई इस माह के दूसरे पखवाड़े में करें। उन्नत किस्मों में समय पर बिजाई के लिए संकर किस्मों (के बी एस एच-1, पी ए सी-36, एम एस एफ एच-8, पी सी एस एच-234, के बी एस एच-44, एच एस एफ एच-848) का बीज इस्तेमाल करें। पछेती बिजाई के लिए एम एस एफ एच 17, पी ए सी 1091, सनजीन 85 तथा प्रोसन 09 तथा एच एस एफ एच-848 उपयुक्त हैं। कम्पोज़िट किस्मों का 4 किलोग्राम व संकर किस्मों का 1.5 से 2.0 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से 4-6 घंटे पानी में भिगोकर, छाया में सुखाकर कतारों में 45 सैं.मी. व पौधों में 30 सैं. मी. के फासले पर 3 से 5 सैं.मी. गहराई पर बोएं। संकर किस्मों का 1.5-2 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ 8 घंटे पानी में भिगोकर फिर छाया में सुखाकर कतारों में 60 सैं.मी. व पौधों में 30 सैं.मी. के फासले पर व 3 से 5 सैं.मी. गहराई पर बोएं।

चूहों का नाश : जनवरी के पहले पखवाड़े तक चूहे मारने का काम अवश्य कर लें। इसके बाद चूहे दवाई छोड़कर फसल की नालियों और बालियों की तरफ ज़्यादा आकर्षित होते हैं व उस समय बिल भी ढूंढना कठिन हो जाता है।

12 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया) व 16 किलोग्राम फास्फोरस (100 किलोग्राम सुपर फास्फेट या 35 किलोग्राम डी.ए.पी.) प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। संकर किस्मों में 45 किलोग्राम यूरिया व 125 कि.ग्रा. एस. एस. पी. डालें।

यदि कटुआ सूण्डी का आक्रमण हो तो खेत की सिंचाई करें या 10 किलोग्राम फेनवालरेट 0.4 प्रतिशत प्रति एकड़ धूड़ें अथवा 80 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. सायपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डेकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को 100 से 150 लीटर पानी में प्रति एकड़ छिड़कें।

बरसीम, लूसर्न व जई

इन चारे वाली फसलों की उचित समय पर कटाई करें और समय-समय पर सिंचाई करें।

सब्जियों में

आलू

आलू की अगेती किस्में तैयार हो गई होंगी। इनकी खुदाई करने से 15 दिन पहले सिंचाई बंद कर दें। अगेती किस्में, कुफरी चन्द्रमुखी और कुफरी जवाहर लगभग 90 से 100 दिनों में तैयार हो जाती हैं जबकि कुफरी बादशाह 115 दिनों में, कुफरी-सिंदूरी लगभग 120 से 125 दिनों में तैयार होती है। कुफरी सतलुज आलू की एक नई किस्म है जो कि मध्यम पछेती है। इन्हें खुदाई करके, छिलकों की क्यूरिंग के लिए छायादार स्थान पर या कमरों में फैलाकर रखें। बीज की फसल के लिए आलुओं की टहनियों को जनवरी के प्रथम सप्ताह में काटें और इन्हें उसी अवस्था में लगभग 10 से 15 दिनों तक ज़मीन में रहने दें। इसके बाद इन्हें खोदकर निकालें और इन्हें ठण्डे हवादार स्थान पर क्यूरिंग के लिए रखें।

इस प्रदेश में बसंतकालीन फसल की सिफारिश नहीं की जाती है क्योंकि इस फसल में कीटों व बीमारियों का अधिक प्रकोप पाया जाता है।

टमाटर

शरद्कालीन फसल के बचे हुए फलों को तोड़ें। इस मौसम में अधिक ठण्ड होने के कारण फलों के पकने में समय लगता है। अत: पूरे आकार के

फल, जिन पर हल्का-सा लाल या पीला निशान दिखना शुरू हो, उन्हें तोड़ लें और कमरे में फैलाकर पकाएं। इस महीने में पाला पड़ने की सम्भावना होती है। अत: उचित होगा कि ऐसे दिनों में खेत की सिंचाई करें व रात में खेत के पास धुआं करें। इस माह के अंत में बसंतकालीन फसल के लिए रोपाई का काम शुरू किया जा सकता है। ऐसे पौधों को पाले से बचाने के लिए इन्हें रात को ढकना ज़रूरी होता है। रोपाई से पहले खेत को भली प्रकार तैयार करें, जिसके लिए पौध रोपाई के लगभग 3 सप्ताह पहले 10 टन गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट प्रति एकड़ की दर से मिलाएं व रोपाई से पहले 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद), 25 किलोग्राम फास्फोरस (160 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) और पोटाश की कमी वाले क्षेत्रों में 20 किलोग्राम पोटाश (32 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें। खेत को क्यारियों में बांटें तथा 45 से 60 सैं.मी. चौड़ी डोलों के एक ओर टमाटर की पौध रोपें। पौध से पौध की दूरी लगभग 45 सैं.मी. रखें। रोपाई के बाद सिंचाई अवश्य करें अन्यथा पौध मरने की सम्भावना रहती है। इस महीने में भी पौध तैयार करने के लिए नर्सरी में इसकी बिजाई की जा सकती है तथा हिसार अरुण, हिसार लालिमा या हिसार ललित नामक किस्मों का प्रयोग करें। सामान्य रूप से एक एकड़ के लिए 200 से 250 ग्राम बीज काफी होता है।

बैंगन

बसंतकालीन फसल के लिए यदि पौध तैयार कर रखी हो तो इस माह के दूसरे पखवाड़े से रोपाई शुरू की जा सकती है परंतु ऐसी फसल को पाले से बचाना आवश्यक होगा। खेत तैयार करने के लिए पौधरोपण से लगभग 3 सप्ताह पहले प्रति एकड़ खेत में 10 टन गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट को भली प्रकार बिखेरकर खेत में मिला दें। 2-3 बार जुताई करके पाटा चलायें तथा इसके पश्चात् खेत की क्यारियां बना लें। एक एकड़ फसल में रोपाई के समय 14 किलोग्राम नाइट्रोजन (30 किलोग्राम यूरिया खाद), 20 किलोग्राम फास्फोरस (125 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 किलोग्राम पोटाश (16 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश) अवश्य दें। रोपाई कतारों में लगभग 60 सैंटीमीटर की दूरी पर करें तथा पौध से पौध की दूरी बैंगन की किस्म के आधार पर 45 से 60 सैं.मी. रखें। रोपाई के बाद सिंचाई करना आवश्यक है। गर्मी की फसल के लिए इस माह भी नर्सरी की पौध तैयार करने के लिए बिजाई की जा सकती है। इनकी उन्नत किस्मों, बी आर 112, हिसार-श्यामल या हिसार प्रगति को प्रयोग में लाएं। एक एकड़ के लिए लगभग 200 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी।

बैंगन की पिछली फसल यदि पाले से मर गई हो तो उसकी पाला प्रभावित टहनियों व पत्तों को काटकर फेंक दें तथा खेत में उचित खाद व पानी दें। ऐसा करने से इन टहनियों में नए कल्ले फूटेंगे जो कि बसंतकालीन अगेती फसल देंगे और इस फसल से अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

मिर्च

बसन्तकालीन फसल के लिए खेत की तैयारी करके इस माह के अन्त में रोपाई की जा सकती है। एक एकड़ खेत में लगभग 10 टन गोबर की खाद रोपाई के लगभग तीन सप्ताह पूर्व खेत में भली प्रकार मिला लें तथा जुताई व पाटा चलाकर खेत में क्यारियां बना लें। नाइट्रोजन की 8 किलोग्राम (18 किलोग्राम यूरिया खाद), 12 किलोग्राम फास्फोरस (75 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 12 किलोग्राम पोटाश (20 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश) पौधरोपण के समय प्रति एकड़ दें। तैयार खेत में पौध की रोपाई कतारों में 45-60 सैं.मी. दूरी पर करें तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 से 45 सैं.मी. रखें। लंबी मिर्च के मुकाबले में शिमला मिर्च की बढ़वार अधिक होती है।

इस महीने में नर्सरी उगाने के लिए मिर्च के बीज की बिजाई की जा सकती है। इसके लिए अनुमोदित किस्में एन पी 46ए या पंत सी-1 को प्रयोग में लाएं। एक हैक्टेयर के लिए लगभग एक किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। शिमला मिर्च में कैलिफोर्निया वण्डर नामक किस्म को प्रयोग में लायें तथा इनके बीज की मात्रा लगभग 400 ग्राम प्रति एकड़ होगी।

मटर

मटर की तैयार फलियों को नियमित रूप से तोड़ें तथा सिंचाई करें। पाऊडरी मिल्ड्यू (सफेद चूर्णी रोग) आने पर 500 ग्राम घुलनशील सल्फर (सल्फैक्स) या 80 मि.ली. कैराथेन को 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ खेत पर छिड़काव करें। पत्तों में सुरंग बनाने वाले कीट तथा चेपा के आक्रमण से फसल को बचाने के लिए 400 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. या 500 मिलीलीटर मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी./एन्थियो 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कीटनाशक के प्रयोग से पहले पकी हुई फलियां तोड़ लें।

मूली, शलगम व गाजर

इस माह भी मूली के बीजों की बिजाई की जा सकती है। एक एकड़ के लिए लगभग 2-2.5 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी।

लहसुन

लहसुन की फसल में नियमित सिंचाई करें व खरपतवार निकालें। नाइट्रोजन खाद से यदि टॉप ड्रैसिंग न की हो तो 16 किलोग्राम नाइट्रोजन (36 किलोग्राम यूरिया खाद) प्रति एकड़ से टॉप ड्रैसिंग करें और सिंचाई करें। हानिकारक कीट व बीमारियों से फसल की रक्षा करें। पर्पल ब्लाच गुलाबी दाग नामक रोग लगने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (500 ग्राम) को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत पर 10-15 दिनों के अन्तर पर छिड़काव करें तथा प्रयोग के समय घोल में चिपचिपापन लाने वाला पदार्थ भी मिला लें।

फूलगोभी, बन्दगोभी व गांठगोभी

इन फसलों की आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा तैयार फूलों व गांठों को काटकर निकालें तथा बाज़ार भेजें। पछेती किस्मों के खेत की उचित निराई-गोड़ाई करें तथा नाइट्रोजन खाद से टॉप ड्रैसिंग करें जैसा कि पहले बताया गया है। किसी भी प्रकार के कीट का आक्रमण होने पर 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें व ज़रूरत पडने पर वही छिड़काव 10 दिन बाद दोहरायें।

पालक

नियमित प्रकार से सिंचाई करें। पिछले माह बताये गये समयानुसार नाइट्रोजन खाद का प्रयोग करें तथा सिंचाई करते रहें। पालक की नई बिजाई भी की जा सकती है।

कद्दू जाति की सब्जियां

अगेती फसल के लिए पॉलिथीन के लिफाफों में या प्लास्टिक ट्रे में की गई बिजाई की देखभाल करें। इन्हें पाले से बचाएं। खेत की तैयारी करें। कद्दू जाति की फसलों (तरबूज, खरबूजा, लौकी, तोरी, टिण्डा, चप्पनकद्दू, करेला, कद्दू आदि) की बिजाई फरवरी के शुरू में की जाती है।

अन्य सब्जियां

सलाद, धनिया, मेथी, जीरा आदि की फसलों की देखभाल करें। हरी पत्तियों को (सलाद, धनिया, मेथी) बेचने के लिए बाज़ार भेजें। भिण्डी, ग्वार व लोबिया आदि फसलों की बिजाई के लिए खेत को तैयार करें।

फलों में

सदाबहार लगाए गए पौधों की पाले, ठण्डी हवा व कोहरे से क्षति हो सकती है। इसलिए नियमित रूप से सिंचाई करके पौधों को सर्दी में क्षति होने से बचाएं विशेष तौर पर पाले वाली रात को पौधों में सिंचाई अवश्य करें। बागों में शाम के समय घास-फूस जलाकर धुआं भी अवश्य करें। इससे बाग के वातावरण का तापक्रम बढ़ेगा और पौधों की क्षति कम होगी। बेर, आंवला, आड़ू, अलूचा व नाशपाती के पौधे 15 जनवरी के पश्चात् लगा सकते हैं तथा बेर, अमरूद व आंवला के देसी लगे पौधे पर वेज ग्राफ्टिंग विधि से कलमी पौधे तैयार कर सकते हैं।

नींबू जाति के फल

अगर दिसम्बर के महीने में काट-छांट न की गई हो तो इस महीने में अवश्य कर लें। मिट्टी जांच के आधार पर या फल तोड़ने के उपरांत 100 कि.ग्रा. गोबर की खाद व 2 कि.ग्रा. एस.एस.पी. व 175 ग्राम पोटाश को सिफारिश अनुसार पेड़ के मुख्य तने से एक मीटर दूर छतरी के नीचे ठीक प्रकार से डालकर मिट्टी में मिलाकर, गोड़ाई और सिंचाई करें। नींबू जाति के पौधों को सूत्रकृमि से बचाने के लिए जनवरी के आखिरी सप्ताह में कार्बोफ्यूरान (फ्यूराडान 3 जी) के दाने 13 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से पौधों के तने के आसपास 9 वर्गमीटर क्षेत्र में (117 ग्राम प्रति पौधा) अच्छी तरह मिलाएं तथा तुरंत बाद प्रचुर मात्रा में पानी दें।

अंगूर

अंगूर के पिछले वर्ष लगाए गए बाग के पौधों का ढांचा बनाने के लिए ठीक ढंग से काट-छांट करें। पुरानी बेलों की काट-छांट के बाद जनवरी के अन्तिम सप्ताह में गोबर की खाद 75 कि.ग्रा. डालकर सिंचाई करें। परलेट किस्म को बावर प्रणाली में 45-50 शाखा प्रति बेल व 2-3 कलियों की संख्या प्रति फल शाखा काट-छांट के समय रखें।

आम

आम के पौधों में म्यूरेट ऑफ पोटाश की बजाय पोटाशियम सल्फेट डालें। यदि आम को मिलीबग से बचाने के लिए पिछले महीने में बताए गए तरीके से बैंड न लगाई हो तो तुरंत जनवरी के प्रथम सप्ताह में यह काम कर लें। बैंड के नीचे मिलीबग पर 100 मि.ली. मिथाईल पैराथियान 50 ई.सी. या 300 मि.ली. एकालक्स 25 ई.सी. को 50 लीटर पानी में मिलाकर 50 पेड़ों पर बैंड के नीचे मध्य जनवरी व फिर मध्य फरवरी में छिड़कें। पेड़ों पर मिलीबग चढ़ गई हो तो 500 मि.ली. मिथाईल पैराथियान 50 ई.सी. या 1500 मि.ली. एकालक्स 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग के पेड़ों पर छिड़कें। इस महीने में आम के पौधों में अगेते फूल आ सकते हैं। उनको अवश्य तोड़ दें नहीं तो यह गुच्छा-मुच्छा रोग को बढ़ा सकते हैं।

आड़ू, अलूचा, नाशपाती, अनार व शहतूत

अगर इन पौधों में कटाई-छंटाई का काम किसी वजह से पूरा नहीं कर सके हों तो फल आने से पहले इस महीने के पहले सप्ताह तक अवश्य कर लें और आड़ू के लिए 25 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 560 ग्राम फास्फोरस और 650 ग्राम पोटाश तथा अलूचा के लिए 36 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 650 ग्राम फास्फोरस व 360 ग्राम पोटाश डालकर गोड़ाई करें और इसके बाद सिंचाई भी अवश्य करें।

अमरूद

पुराने पौधों में काट-छांट अवश्य करें और उसके तुरन्त बाद 0.2 प्रतिशत कॉपर आक्सीक्लोराइड (ब्लाइटॉक्स) का छिड़काव अवश्य करें।

बेर

अगर किसी कारण से उर्वरक न डाले गये हों तो इस माह के पहले सप्ताह तक अवश्य डाल दें व यूरिया 2 प्रतिशत (20 ग्राम) + 0.5 प्रतिशत (5 ग्राम) ज़िंक सल्फेट को एक लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर छिड़काव करें। फिर गोड़ाई करके सिंचाई करें। बेर की मक्खी से

फलों को बचाने के लिए जनवरी के अन्त में 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. + 5 कि.ग्रा. गुड़ या चीनी को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़काव करें। यदि बालों वाली सूण्डी का आक्रमण हो तो एक किलोग्राम कार्बेरिल 50 घु.पा. या 400 मि.ली. डाईक्लोरवास 76 ई.सी. या 500 मि. ली. मोनोक्रोटोफास 36 डब्ल्यू. एस. सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। सफेद चूर्णी रोग की रोकथाम के लिए कैराथेन 0.1% या 0.2% सल्फेक्स के घोल का छिड़काव करें।

आंवला

फलों की तुड़ाई अगर नहीं की है तो पहले सप्ताह तक अवश्य कर लें नहीं तो नकरोसिस बीमारी का फलों पर प्रकोप हो सकता है। तुड़ाई उपरांत खेत की गहरी जुताई कर 15 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रति वर्ष प्रति पौधे की आयु के हिसाब से अवश्य डालें व सिंचाई करें।

पशुओं में

गाय-भैंस

गाय-भैंस को साफ रखें। पशु को सूखे में रहने दें अन्यथा उन्हें जुएं और चीचड़ हो सकती हैं। इनके बिछावन को गीला न होने दें। इस मास भैंसें नए दूध होती हैं। भैंसों में ब्याने के डेढ़ मास बाद गर्मी के लक्षण दिखने पर नए दूध करवाएं। गर्मी में आने के पश्चात् 8-10 घंटे बाद उनकी मिलाई अच्छी नस्ल के झोटे से करवानी चाहिए या नज़दीक के कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र से नये दूध करवानी चाहिए। नियमित रूप से भैंस को गर्मी में लाने के लिए आवश्यक है कि उन्हें सन्तुलित आहार दें तथा 50 ग्राम खनिज मिश्रण नियमित रूप से दें। भैंस अधिकतर रात को या सुबह के समय गर्मी में आती है। भैंसों में गर्मी की पहचान कठिनाई से होती है क्योंकि कई बार उनकी गर्मी गूंगी रहती है। यदि नसबन्दी कराया हुआ झोटा भैंसों के समूह में छोड़ दिया जाए तो वह गर्मी की पहचान कर लेता है जिससे आप ठीक समय पर अपनी भैंस का प्रजनन करा सकते हैं तथा यह समस्या काफी सीमा तक दूर हो सकती है।

मुंह-खुर की बीमारी से बचाव का टीका पशु चिकित्सक से लगवाएं। पशुओं को कृमिनाशक दवाइयां देकर उन्हें स्वस्थ रखें। पानाकुर और बैनमिन्थ नाम की दवाइयां पशुओं को कृमिरहित करने के लिए प्रयोग की जाती हैं। आप इन्हें पशु-चिकित्सक की सलाह से प्रयोग करें। पशुओं के भोज्य पदार्थों को स्वच्छ एवम् सूखे स्थान पर रखें क्योंकि सर्दी के मौसम में नमी के कारण फफूंदी लगने का भय बना रहता है। पशुओं के खाने में सूखे एवम् दाने की मात्रा को बढ़ाएं जिससे कि पशुओं के शरीर में उचित मात्रा में गर्मी पैदा हो जो पशुओं के लिए ठण्ड से बचाव के लिए अति आवश्यक है। बरसीम के हरे चारे के साथ सूखा चारा भी मिलाना चाहिए।

दूध निकालते समय पूर्ण हस्त विधि से दूध निकालें। इस विधि से अंगूठा बाहर रहता है और थन पूरे हाथ और अंगुलियों के बीच में होना चाहिए। यदि थनों में ज़ख्म हो गया हो तो उन पर ज़िंक ऑक्साइड का मरहम लगाएं। पशुओं के आखिर का दूध चुटकी विधि से निकाल कर अयन खाली करें। दूध निकालते समय सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा थनों में थनैला रोग हो सकता है। इससे आपका व आपके पशु का काफी नुकसान हो सकता है।

सर्दी के मौसम में पशुओं को सूखा चारा रात को खिलाएं। ऐसा करने से पशुओं को कम ठंड लगेगी। सर्दी के दिनों में 2.5 से 5 महीने तक के कटड़े व बछड़ों को 23-30 ग्राम (मुट्ठी भर) नौशादर अवश्य खिलाएं। ऐसा करने से इन पशुओं में पेशाब के बंधे की समस्या से निजात पा सकते हैं। सर्दी के मौसम में हल्का गुनगुना पानी पीने के लिए दें।

भेड़-बकरी

भेड़-बकरियों को कृमिनाशक दवाइयां अपने पशु चिकित्सक के परामर्श से पिलाएं। भेड़-बकरियों को सर्दी से बचाकर रखें।

घर-आंगन में

घर-आंगन में

गर्म कपड़ों को धोने से पहले उनकी मुरम्मत कर लेनी चाहिए नहीं तो छेद बड़े हो जाते हैं।

गर्म कपड़ों को लटकाकर न सुखाएं, नहीं तो उनका आकार बिगड़ जाता है। इनको किसी चारपाई पर चादर बिछाकर सुखाना चाहिए।

गर्म कपड़ों को ज़्यादा निचोड़ना नहीं चाहिए।

सर्दियों के मौसम में गुड़, तिल, मूंगफली का अलग-अलग व्यंजनों में प्रयोग करना चाहिए, जैसे पौष्टिक लड्डू, पट्टी (गज्जक) आदि।

हरी पत्तेदार तथा कच्ची सब्जियां सलाद के रूप में प्रयोग करनी चाहिएं।

छोटे बच्चों को ठंड से बचाकर रखें तथा उन्हें स्वैटर, मौजे तथा टोपी अवश्य पहनाएं।

नहाने के लिए गुनगुने पानी का इस्तेमाल करें।

फटे होंठों पर ग्लिसरीन या वैसलीन या थोड़ा सा देसी घी गर्म करके लगाएं।

सर्दियों में सिलाई की मशीन में मशीन का तेल डालकर उसे धूप में रख देना चाहिए।

जल संरक्षणः आज की मांग

✍ **प्रीति यादव, सरदूल मान एवं सुशील कुमार**
कृषि विज्ञान केंद्र, फतेहाबाद
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में डग-डग रोटी, पग-पग नीर की कहावत प्रचलित थी। जल संपदा से संपन्न होने के साथ ही भारत की नदियों का जल निर्मल और पवित्र भी था। भारत में सबसे ज़्यादा पानी का उपयोग खेती के लिए किया जाता है। उपलब्ध पानी का लगभग 76 प्रतिशत हिस्सा देश में सिंचाई में लाया जाता है, जबकि उद्योगों में 7 प्रतिशत, घरों में 11 प्रतिशत और अन्य कार्यों में 6 प्रतिशत पानी का उपयोग किया जाता है। विडंबना है कि मानसून के बादल घिरे होने के बावजूद देश में पानी सबसे बडी समस्या के रूप में उभर कर सामने आया है। इस संकट के शहरों और गाँवों में अलग अलग रूप है। गांवों में यह खेती और सिंचाई के सामने खडे संकट के रूप में हैं, तो शहरों में पीने के पानी की किल्लत के रूप में। पेयजल की समस्या गांवों में भी है, पर चूंकि मीडिया शहरों पर केन्द्रित है, इसलिए शहरी समस्या अधिक भयानक रूप से सामने आ रही है। हम पेयजल के बारे में ही सुन रहे हैं, इसलिए खेती से जुड़े मसले सामने नहीं आ रहे हैं, जबकि इस समस्या का वास्तविक रूप इन दोनों को साथ रखकर ही समझा जा सकता है।

शहरीकरण तेज़ी से हो रहा है और गांवों से आबादी का पलायन शहरों की ओर हो रहा है। उसे देखते हुए शहरों में पानी की समस्या पर देश का ध्यान केंन्द्रित है। हाल ही में चेन्नई शहर से जैसी तस्वीरें सामने आई हैं, उन्हें देखकर शेष भारत में घबराहट है। संयोग से हाल ही में पेश केंन्द्रीय बजट में भारत सरकार ने घोषणा की है कि सन् 2024 तक देश के हर घर में नल से जल पहुंचाया जाएगा। सरकान ने "जल शक्ति" के नाम से नया मंत्रालय भी बनाया है। इसके अंतर्गत दो चरणों में जल शक्ति अभियान चलाया जा रहा है, पहला चरण 1 जुलाई से 15 सितंबर 2019 तक तथा दूसरा 1 अक्तूबर से 30 नवम्बर 2019 तक मनाया जाएगा। यह अभियान केंद्र व राज्य सरकार द्वारा देश के सभी राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों में लागू होगा। नीति आयोग की पिछले साल की एक रिपोर्ट के अनुसार देश के करीब 10 करोड़ लोगों के सामने पानी का संकट है। देश के 21 प्रमुख शहरों में ज़मीन के नीचे का पानी तकरीबन खत्म हो चुका है। इनके परम्परगत जल स्रोत सूख चुके हैं। वहीं हरियाणा राज्य के 78 खण्ड डार्क ज़ोन में आ चुके हैं। देश में पानी के संकट के साथ-साथ पानी की गुणवत्ता पर भी सवाल है।

केन्द्रीय जल आयोग ने जून में बताया कि देश के दो-तिहाई जलाशय अपने सामान्य स्तर से नीचे चले गए हैं, जहां प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता 1951 में 5177 क्यूबिक मीटर थी वहीं यह उपलब्धता घट कर 2014 में 1508 क्यूबिक मीटर रह गई है। और अनुमान है कि अगर पानी का दोहन इसी प्रकार होता रहा तो 2050 तक यह उपलब्धता 1235 क्यूबिक मीटर रह जाएगी। देश में पानी की आपूर्ति या तो नदियों से होती है या ज़मीन के नीचे के पानी से। तकरीबन चालीस फीसदी आपूर्ति ज़मीन के नीचे के पानी से होती है। खेती और उद्योगों के लिए इस पानी के अंधाधुंध दोहन के कारण भी यह संकट पैदा हुआ है। कृषि पर निर्भर देश होने के नाते सिंचाई भारत की रीढ़ की हड्डी है। भारत अलग-अलग भौगोलिक स्थितियों, जलवायु और वनस्पतियों वाला विभिन्न जैव विविधताओं से भरा देश है। भारत में कृषि हमेशा मुख्य उद्यम रहा है और भविष्य में भी रहेगा। देश में कृषि मुख्य तौर से वर्षा पर निर्भर है। आमतौर पर वर्षा साल के चार महीनों में होती है। इस दौरान पूरे पानी का इस्तेमाल नहीं हो पाता और अप्रयुक्त पानी बह जाता है। दूसरी ओर, बाकी मौसमों में पानी की भयानक तंगी रहती है। भारत में सिंचाई मुख्य तौर से भूमिगत जल पर आधारित है।

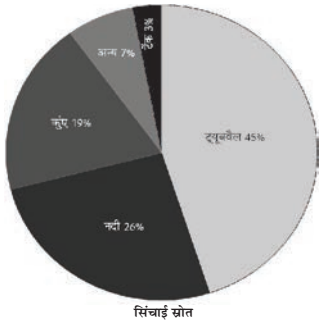

सिंचाई स्रोत

2010-11 की कृषि गणना के अनुसार भारत में कुल सिंचित क्षेत्र 6.47 करोड़ हैक्टेयर का है। इसमें से सबसे ज़्यादा 45 प्रतिशत क्षेत्र में सिंचाई ट्यूबवेल से होती है जिसके बाद नहरों और कुओं का स्थान है। जल के स्त्रोत सीमित हैं। नए स्त्रोत हैं नहीं, ऐसे में जलस्त्रोतों को संरक्षित रखकर एवं जल का संचय कर हम जल संकट का मुकाबला कर सकते हैं। इसके लिए हमें जल के उपयोग में मितव्ययी बनना पड़ेगा। जलीय कुप्रबंधन को दूर कर भी हम इस समस्या से निपट सकते हैं। जल के संकट से निपटने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव:

प्रत्येक फसल के लिये ईष्टतम जल की आवश्यकता का निर्धारण किया जाना चाहिए तद्नुसार सिंचाई की योजना बनानी चाहिए। सिंचाई कार्यों के लिये फव्वारा व टपका सिंचाई जैसे पानी की कम खपत वाली प्रौद्योगिकियों को प्रोत्साहित करना चाहिए। कृषि में औसत व द्वितीयक गुणवत्ता वाले पानी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, विशेष रूप से पानी के अभाव वाले क्षेत्रों में।

विभिन्न फसलों के लिये पानी की कम खपत वाले तथा अधिक पैदावार वाले बीजों के लिये अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

फसल व किस्म चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कौनसी फसल व किस्म को पानी की ज़रूरत कम होगी।

जहाँ तक सम्भव हो ऐसे खाद्य उत्पादों का प्रयोग करना चाहिए जिसमें पानी का कम प्रयोग होता है। खाद्य पदार्थों की अनावश्यक बर्बादी में कमी लाना भी आवश्यक है। विश्व में उत्पादित होने वाला लगभग 30 प्रतिशत खाना खाया नहीं जाता है और यह बेकार हो जाता है। इस प्रकार इसके उत्पादन में प्रयुक्त हुआ पानी भी व्यर्थ चला जाता है।

जल संकट से निपटने के लिये हमें वर्षाजल भण्डारण पर विशेष ध्यान देना होगा। वाष्पन या प्रवाह द्वारा जल खत्म होने से पूर्व सतह या उपसतह पर इसका संग्रह करने की तकनीक को वर्षाजल भण्डारण कहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि तकनीक को न सिर्फ अधिकाधिक विकसित किया जाय बल्कि अधिक से अधिक अपनाया भी जाय। यह एक ऐसी आसान विधि है जिसमें न तो अतिरिक्त जगह की आवश्यकता होती है और न ही आबादी विस्थापन की। इससे मिट्टी का कटाव भी रुक जाता है तथा पर्यावरण भी संतुलित रहता है। बंद एवं बेकार पड़े कुंओं, पुनर्भरण पिट, पुनर्भरण खाई तथा पुनर्भरण शॉफ्ट आदि तरीकों से वर्षाजल का बेहतर संचय कर हम पानी की समस्या से उबर सकते हैं।

वर्षाजल प्रबंधन और मानसून प्रबंधन को बढ़ावा दिया जाय और इससे जुड़े शोध कार्यों को प्रोत्साहित किया जाय। जल शिक्षा को अनिवार्य रूप से पाठ्यक्रम में जगह दी जाय।

जल प्रबंधन और जल संरक्षण की दिशा में जन जागरुकता को बढ़ाने का प्रयास हो। जल प्रशिक्षण को बढ़ावा दिया जाए तथा संकट से निपटने के लिये इनकी सेवाएं ली जाएं।

पानी के इस्तेमाल में हमें मितव्ययी बनना होगा। छोटे-छोटे उपाय कर जल की बड़ी बचत की जा सकती है। मसलन हम दैनिक जीवन में पानी की बर्बादी बिल्कुल न करें और एक-एक बूँद की बचत करें। बागवानी जैसे कार्यों में भी जल के दुरुपयोग को रोकें।

औद्योगिक विकास और व्यावहारिक गतिविधियों की आड़ में जल के अंधाधुंध दोहन को रोकने के लिये तथा इस प्रकार से होने वाले जल प्रदूषण को रोकने के लिये कड़े व पारदर्शी कानून बनाये जाएं।

जल संरक्षण के लिये पर्यावरण संरक्षण आवश्यक है। जब पर्यावरण बचेगा तभी जल बचेगा। पर्यावरण असंतुलन भी जल संकट का एक बड़ा कारण है। इसे इस उदाहरण से समझ सकते हैं। हिमालय पर्यावरण के कारण सिकुड़ने लगे हैं। विशेषज्ञों के अनुसार सन 2030 तक ये ग्लेशियर काफी अधिक सिकुड़ सकते हैं। इस तरह हमें जल क्षति भी होगी। पर्यावरण संरक्षण के लिये हमें वानिकी को नष्ट होने से बचाना होगा।

हमें ऐसी विधियां और तकनीकें विकसित करनी होंगी जिनसे लवणीय और खारे पानी को मीठा बनाकर उपयोग में लाया जा सके। इसके लिये हमें विशेष रूप से तैयार किये गये वाटर प्लांटों को स्थापित करना होगा। चेन्नई में यह प्रयोग बेहद सफल रहा जहां इस तरह स्थापित किये गये वाटर प्लांट से रोज़ाना 100 मिलियन लीटर पीने योग्य पानी तैयार किया जाता है।

प्रदूषित जल का उचित उपचार किया जाए तथा इस उपचारित जल की आपूर्ति औद्योगिक इकाइयों को की जाए।

जल प्रबंधन व शोध कार्यों के लिये निवेश को बढ़ाया जाए।

जनसंख्या बढ़ने से जल उपभोग भी बढ़ता है, ऐसे में विशिष्ट जल उपलब्धता (प्रतिव्यक्ति नवीनीकृत जल संसाधन की उपलब्धता) कम हो जाती है। अतएव इस परिप्रेक्ष्य में हमें जनसंख्या पर भी ध्यान देना होगा।

हमें पानी के कुशल उपयोग पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। जल वितरण में असमानता को दूर करने के लिये जल कानून बनाने होंगे।

देश को पानी के संकट से पार पाने के लिए जन भागीदारी की आवश्यकता है। किसी और को दोष देने के बजाए देश के प्रत्येक नागरिक को पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्य को समझना होगा। जीवन शैली में बदलाव लाकर पानी की खपत को कम करना होगा। अधिक से अधिक वर्षा जल को संग्रहीत करने की परंपरा को विकसित करना होगा। यह ध्यान रखना होगा कि बारिश की एक बूंद भी व्यर्थ न जाए। इसके लिए वर्षा जल संरक्षण (रेन वॉटर हार्वेस्टिंग) एक अच्छा माध्यम हो सकता है। आवश्यकता है इसे और विकसित व प्रोत्साहित करने की। इसके प्रति जनजागृति और जागरूकता को भी बढाना समाज की आवश्यकता है।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

बारानी खेती से उच्च पैदावार हेतु प्रभावी विस्तार शिक्षा

✍ **भरत सिंह घनघस, प्रदीप चहल एवं सूबे सिंह**[1]

विस्तार शिक्षा विभाग

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश का भौगोलिक क्षेत्र 329 मिलियन हैक्टेयर है तथा 143 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में खेती की जाती थी जो अब तेज़ी से बढ़ते शहरीकरण व औद्योगीकरण की वजह से घटकर 141 मिलियन हैक्टेयर पर सिमट गई। इसमें भी 12 प्रतिशत (लगभग 32 लाख हैक्टेयर) क्षेत्र शुष्क अथवा बारानी है। शुष्क क्षेत्र का लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान है तथा हरियाणा प्रांत का भी लगभग 20 प्रतिशत क्षेत्र शुष्क/बारानी के अन्तर्गत पड़ता है जिसमें मुख्य रूप से दक्षिण-पश्चिम हरियाणा के ज़िले जैसे महेन्द्रगढ़, रेवाड़ी, दादरी, भिवानी, मेवात, झज्जर, सिरसा, हिसार व फतेहबाद इत्यादि शामिल हैं।

कम व अनिश्चित वर्षा इस क्षेत्र की मुख्य जलवायु विशेषता है। इन क्षेत्रों में कम वर्षा (250-500 मि.ली.) होती है जिसमें 80-85% मानसून वर्षा होती है। यहां पर अधिकतर हल्की एवं बालुई मिट्टी पाई जाती है जिनकी जलधारण क्षमता कम होती है। अत: खरीफ फसलों की बिजाई एवं पैदावार वर्षा आधारित होने के साथ-साथ रबी की फसलें भी परती/भदावड़ी या नमी संरक्षण या वर्षा जल संरक्षण सुविधाओं पर निर्भर रहती हैं। ऐसी स्थिति में किसानों द्वारा बारानी खेती से उच्च पैदावार के लिए प्रमाणित एवं अनुमोदित आदान, तकनीकें एवं प्रौद्योगिकियों का समुचित उपयोग कर किसान न केवल अपनी पैदावार बढ़ा सकते हैं बल्कि पर्यावरण संरक्षण को भी बढ़ावा दे सकते हैं। अत: निम्नलिखित कृषि क्रियाएं बारानी खेती से अच्छी पैदावार के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

- सर्व प्रथम किसान वर्षा जल संरक्षण एवं भण्डारण तकनीकों का प्रयोग करें जिनमें शामिल हैं :

  ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई लेकिन किसान अत्यधिक जुताई द्वारा महीन रेत या धूल गुब्बारा बनने से बचें।

  खेत का मज़बूत मेढ़ीकरण कर खेत का पानी खेत में संजोएं।

  मकानों एवं भवनों से बहते व्यर्थ पानी का भण्डारण करें या रिचार्ज के लिए प्रयोग करें।

  वर्षा जल का संचय खेत बावड़ी/तालाब या आजकल आधुनिक एवं सस्ते जल संचय संसाधन जैसे सिलपौलिन शीट (250 जीएसएम) 5 मी ग 4 मी ग 1.5 इत्यादि का प्रयोग करें।

- शुष्क अनुसंधान केन्द्रों एवं संस्थानों द्वारा अनुमोदित कम अवधि, कम पानी एवं शुष्क सहनशील/रोधी फसलों एवं किस्मों का बिजाई के लिए चयन करें जिनमें मुख्यत: दलहनी, तिलहनी, मसालेदार एवं औषधीय फसलें शामिल हैं।
- अगर किसान को अपर्याप्त नमी में फसल बिजाई करनी पड़े तो हाइड्रोसीड ड्रिल, हाइड्रोजैल या सीड़ प्राईमिंग, जीवमृत उपचार इत्यादि का प्रयोग कर अच्छा फसल जमाव सुनिश्चित करें।
- रासायनिक खादों की बजाए गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट,

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

जैविक खाद, जीवामृत, घनजीवामृत इत्यादि द्वारा फसल पोषण करें जो न केवल ज़मीन की जलग्रहण क्षमता को बढ़ाता है बल्कि पौधों में पर्याप्त तनाव/सहनशीलता भी प्रदान करता है।

- रासायनिक खादों का कम से कम प्रयोग करें। यदि अति आवश्यक तथा पर्याप्त नमी उपलब्धता पर बिजाई के समय प्रयोग करना ही उचित होगा।
- बिजाई के लिए उन्नत मशीनें जैसे रीजर सीडर या दोहरी पंक्ति बारानी हल इत्यादि का प्रयोग करें।
- खेत से निकाली गई खरतपतवारों का मल्च के रूप में प्रयोग कर वाष्पीकरण कम किया जाए।
- निराई-गोड़ाई ठीक समय पर करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ भूमि नमी संरक्षण को बढ़ावा प्रदान करें।
- यदि बिजाई उपरान्त वर्षा में अत्यधिक कमी या देरी का सामना फसल को करना पड़े तो फसल बचाने के लिए पौधों की संख्या नमी अनुसार नियंत्रित करें।
- कृषिवानिकी पेड़ खेजड़ी उगाकर भूमि संरक्षण एवं जल संरक्षण को बढ़ावा दें। प्रभावी विस्तार शिक्षा के लिए निम्नलिखित गतिविधियां शामिल हैं जो इस प्रकार हैं :
- विस्तार शिक्षा वैज्ञानिकों को शोध द्वारा बारानी इलाकों एवं कृषि पद्धतियों का अध्ययन करना होगा जो किसानों के वर्षों पुराने अनुभव, प्रकृति, स्थानीय संसाधनों व किसानों की परिस्थितियों पर आधारित होते हैं।
- प्रगतिशील एवं सफलतम किसानों द्वारा अपनाई सफलतम बारानी कृषि पद्धतियों जैसे समेकित कृषि प्रणाली, फसल विविधिकरण एवं अन्य नवाचारों विस्तारीकरण प्रदर्शन प्लाटों, प्रशिक्षणों एवं जागरूकता अभियानों द्वारा करना।
- सामुदायिक जल संरक्षण, संचयन एवं वितरण इत्यादि के लिए स्वयं सेवी एवं स्वावलम्बी युवा समूहों का गठन कर बारानी क्षेत्र से अधिक से अधिक पैदावार एवं आमदन प्राप्त करना।
- किसानों का शुष्क क्षेत्रों अद्यतन ज्ञान वर्धन, कृषक भ्रमण प्रसार तकनीक के माध्यम से विशेषकर शुष्क क्षेत्र अध्ययन विभागों, क्षेत्रीय एवं केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान केन्द्रों इत्यादि पर ज़्यादा से ज़्यादा करवाना सुनिश्चित करें।
- गांव-गांव प्रशिक्षित किसान मित्रों के माध्यम से किसानों को तकनीकी ज्ञान उनकी स्थानीय भाषा एवं लोक साहित्य द्वारा उपलब्ध करवाकर अधिक से अधिक किसानों तक पहुंचाना।
- मोबाइल संदेश सेवा या सोशल मीडिया का वैज्ञानिकों या अन्य प्रसार अधिकारियों द्वारा अधिक से अधिक प्रयोग शुष्क कृषि सम्बन्धी नवीन, नवाचार एवं प्रभावी जानकारी देना।
- कृषि प्रसार से संबंधित सभी सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थानों एवं जल एवं भूमि संरक्षण तथा पर्यावरण संरक्षण योजनाओं/परियोजनाओं में आपसी तालमेल बढ़ाकर उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग द्वारा बारानी खेती प्रोत्साहन करना चाहिए जिसमें मुख्यत: परम्परागत कृषि विकास योजना, जैविक खेती, राष्ट्रीय सतत् कृषि विकास मिशन, जलवायु अनुकूलन कृषि पर राष्ट्रीय पहल (विक्रा) इत्यादि शामिल हैं।

मोटे अनाज : पौष्टिक महत्व एवं स्वास्थ्य लाभ

✍ **सुमन एवं सरोज दहिया**
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे प्रतिदिन खानपान में अनाज के रूप में गेहूं और चावल का ही अधिक प्रयोग होता है जबकि हमें सभी प्रकार के मोटे अनाजों का सेवन करना चाहिए। भारत मोटे अनाज, जैसे बाजरा, ज्वार, जई, जौ, रागी आदि का उत्पादन करने में अग्रणी है। इन अनाजों को गरीब व्यक्ति के अनाज के रूप में जाना जाता है। ये अनाज खाने में थोड़े मोटे होते हैं इसलिए लोग इन्हें खाना पसंद नहीं करते हैं। जबकि ये मोटे दिखने वाले तथा गरीबों का अनाज पौष्टिकता से भरपूर व स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकारी होते हैं। बहुत कम लोग इनके स्वास्थ्य लाभ और पोषण संबंधी मूल्यों के बारे में जानते हैं। ये अत्यधिक पौष्टिक, ग्लूटन रहित तथा अम्लरोधी खाद्य हैं। अत: ये आसानी से पचने व संतुष्टि प्रदान करने वाले होते हैं। इनमें मुख्यत: प्रोटीन, रेशा, खनिज लवण, बी काम्प्लेक्स विटामिन, आवश्यक एमिनो एसीड, वसीय अम्ल तथा फाइटोकेमिकल्स पाए जाते हैं। इनमें मौजूद प्रोटीन, वसा व खनिज लवण आदि की मात्रा गेहूं व चावल जैसे अनाजों के बराबर पाई गई है। ये आयरन (लोह तत्व), कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम, ज़िंक जैसे खनिज लवणों का भंडार हैं। इनके पौष्टिक महत्व के अलावा ये अनेक प्रकार के रोगों से बचाव में लाभदायक हैं, जैसे दिल की बीमारी, कैंसर, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, एनीमिया, मोटापा, हड्डियों की बीमारी आदि।

ज्वार : यह दुनिया में उगाया जाने वाला पांचवां सबसे महत्वपूर्ण अनाज है और करीब आधे अरब लोगों का मुख्य आहार है। ज्वार में सभी प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं जिससे कुपोषण की समस्या नहीं होती है। इसमें बहुत कम वसा होती है और ये कार्बोहाइड्रेट का ज़बरदस्त भंडार है। इसमें प्रचुर मात्रा में प्रोटीन और फाइबर होता है। ज्वार मधुमेह, हड्डियों तथा एनीमिया की समस्या को दूर करने में बहुत उपयोगी है। यह हायपरटेंशन के रोगियों के लिए भी उपयोगी है।

बाजरा : बाजरा, गेहूं, धान, मक्का, जौ और ज्वार के बाद छठा सबसे महत्वपूर्ण अनाज है। इसमें भरपूर मात्रा में प्रोटीन, वसा, खनिज लवण जैसे आयरन, ज़िंक, पौटेशियम, फॉसफोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम, कॉपर और मैंगनीज़, विटामिन 'बी', रेशा व फाइटोकेमिकल्स मौजूद होते हैं जिसके कारण इसे 'पोषक अनाज' की संज्ञा दी गई है। बाजरा बहुत पोषक होता है जो आसानी से हज़म हो जाता है। बाजरे को प्राय: 'गरीब आदमी का अनाज' के रूप में जाना जाता है जो कि एशिया और अफ्रीका के शुष्क क्षेत्रों में उत्पादित होता है तथा खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में विशेष भूमिका अदा करता है। बाजरा मधुमेह से पीड़ित लोगों के लिए अनुकूल है क्योंकि इसमें निहित ग्लूकोज़ धीरे-धीरे निकलता है। गेहूं से एलर्जी वाले लोगों के लिए यह बहुत अच्छा विकल्प है क्योंकि इसमें ग्लूटन नहीं होता। बाजरा खाने से एनीमिया नहीं होता तथा हिमोग्लोबिन और प्लेटलेट्स ऊंचे रहते हैं। बाजरा हड्डियों तथा दिल के रोगों में भी उपयोगी है। इसके सेवन से उच्च रक्तचाप ठीक रहता है।

जौ : जौ एक महत्वपूर्ण अनाज है जो विश्व में चौथे स्थान पर है। इसमें उत्तम कोटि का प्रोटीन मौजूद होता है। इसमें रेशा भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसमें पाए जाने वाले खनिज लवण दूसरे अनाजों की अपेक्षा अधिक मात्रा में होते हैं। जौ में सबसे अधिक एल्कोहल पाया जाता है। जौ का मुख्यत: माल्ट, सत्तू और दलिया बनाने में प्रयोग किया जाता है। जौ खाने से ब्लड कोलेस्ट्रोल कंट्रोल में रहता है।

जई : जई आसानी से पच जाने वाले फाइबर का ज़बरदस्त स्रोत है। साथ ही इसमें कॉम्पलेक्स कार्बोहाइड्रेट्स भी ज़बरदस्त मात्रा में मौजूद होते हैं। इसमें कैल्शियम, ज़िंक, मैंग्नीज़, लोहा और विटामिन 'बी' व 'ई' भरपूर मात्रा में होते हैं। इसमें फोलिक एसिड होता है जो बढ़ती उम्र वाले

(शेष पृष्ठ 23 पर)

कृषि में जैविक खाद का महत्व

✍ राखी धनखड़, सौरभ जाखड़ एवं जोगिन्दर सिंह मलिक[1]
बागवानी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज के वर्तमान युग में प्रदूषण सबसे बड़ी समस्या है। दिन प्रतिदिन नई तकनीकों का प्रयोग करके अधिक उत्पादन की चाह में हमने पर्यावरण, जल, वायु, तथा मृदा प्रदूषण को बढ़ावा दिया है। खेती के सन्दर्भ में, रासायनिक खादों के अंधाधुन उपयोग से जहां खेती की लागत में वृद्धि हुई है, वहीं मृदा उर्वरता में निरन्तर कमी आ रही है। इससे न केवल उत्पादकता कम हुई है अपितु मनुष्य के शरीर पर भी ऐसे रासायनिक खादों वाले उत्पादों का गलत प्रभाव पड़ रहा है। ऐसे समय में हमें एक ऐसे विकल्प की आवश्यकता है जिससे रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में कटौती हो और फसलों के उत्पादन पर भी बुरा असर न पड़े। जैविक खाद का उपयोग इस समस्या का सबसे उचित समाधान है।

जैविक खाद : जैविक खाद लाभकारी जीवाणुओं का ऐसा जीवंत मिश्रण है जिसका बीज, जड़ या मिट्टी में प्रयोग करने पर पौधों को अधिक मात्रा में तत्व मिलने लगते हैं तथा साथ ही साथ मिट्टी की जीवाणु क्रियाशीलता तथा स्वास्थय में वृद्धि होती है। जैविक खाद में ऐसे जीवाणु तथा कवक होते हैं जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं तथा मृदा में बंद फॉस्फेट को मुक्त करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं। जैविक खाद के जीवाणु कार्बनिक पदार्थों को तेज़ी से विघटित करके मृदा को पोषक तत्व भी प्रदान करते हैं। राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम, नास्टॉक, एजोला इत्यादि सूक्ष्म जीव जैविक खाद का मिश्रण बनाते हैं। विभिन्न जैविक खादें निम्न प्रकार से हैं :

नाइट्रोजनी जैविक खाद: नाइट्रोजनी जैविक खाद वो जैविक खाद होती है जो मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाती है। प्रकृति में कई ऐसे जीवाणु और नील हरित शैवाल हैं जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं। राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, बेजरिंक्य, क्लॉस्ट्रिडियम, रोडोस्पाइरिलम, हर्बास्पाइरिलम और एजोस्पाइरिलम नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले कुछ महत्वपूर्ण जीवाणु हैं। राइजोबियम जीवाणु दलहनी वनस्पतियों की जड़ों में सहजीवी रूप में रहकर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं। एजोटोबैक्टर, बेजरिंकिया, क्लॉस्ट्रिडियम तथा रोडोस्पाइरिलम गैर सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण जीवाणु हैं क्योंकि वे वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को मृदा में मुक्त अवस्था में यौगिकीकरण करते हैं। हर्बोस्पाइरिलम तथा एजोस्पाइरिलम सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरण जीवाणु हैं क्योंकि वे पौधों की जड़ों में रहते हैं और वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं। ये दोनों जीवाणु उष्णकटिबंधीय घासों और फसलों, जैसे मक्का और ज्वार के जड़ क्षेत्र में निवास करते हैं।

फॉस्फेटी जैविक खाद: ये वो जैविक खाद है जो मृदा में बंद फॉस्फेट को घुलनशील बना कर पौधों को उपलब्ध कराती है। फॉस्फेट को घुलनशील बनाने वाले कई कवक, जैसे ऐकॉलोस्पोरा, जाइगास्पोरा, एंडोगोन, ग्लोमस, स्केरोसिस्टिस, ऐमेनिटा, बोलिटस आदि पौधों की जड़ों के साथ सहजीवन बिताते हैं तथा पौधों के लिए फॉस्फेट की आपूर्ति करते हैं। पौधों की जड़ों के साथ कवक के इस सहजीवन को कवक मूल संबंध कहा जाता है। आंतरिक कवकमूल और बाह्य कवकमूल कवकमूल के दो अलग-अलग प्रकार हैं। स्वतन्त्र रूप से रहने वाले कुछ जीवाणु जैसे बैसिलस सब्टिलिस, स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस एवं स्यूडोमोनास प्यूटिडा भी हैं जो फॉस्फेट को घुलनशील बनाकर उसे पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

सेल्यूलोलिटिक जैविक खाद : सेल्यूलोलिटिक जैविक खाद वह जैविक खाद है जो जैविक पदार्थों का तेज़ी से विघटन करके मृदा में पोषक तत्वों को मुक्त करती है। एस्पर्जिलस, ट्राइकोडर्मा, पेनिसिलियम आदि कवक इस प्रकार के जैविक खाद के उदाहरण हैं।

जैविक उर्वरकों को प्रयोग करने की विधि : जैविक उर्वरकों को चार विभिन्न तरीकों से खेती में प्रयोग किया जाता है:

बीज उपचार विधि : जैव उर्वरकों के प्रयोग की यह सर्वोत्तम विधि है। 1/2 लीटर पानी में लगभग 50 ग्राम गुड़ या गोंद मिलाकर उबाल लेते हैं ठंडा होने के बाद उसमें जैव उर्वरक (200 ग्राम) को अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लेते हैं। इस घोल को 10 किग्रा बीज पर छिड़ककर अच्छी तरह मिला लेते हैं जिससे प्रत्येक बीज पर इसकी परत चढ़ जाये। इसके उपरान्त बीजों को छायादार जगह में सुखा लेते हैं। उपचारित बीजों की बुवाई सूखने के तुरन्त बाद कर लेनी चाहिए।

पौध जड़ उपचार विधि : धान तथा सब्जी वाली फसलें जिनके पौधों की रोपाई की जाती है जैसे टमाटर, फूलगोभी, पत्तागोभी, प्याज़ इत्यादि फसलों में पौधों की जड़ों को जैव उर्वरकों द्वारा उपचार किया जाता है। इसके लिये किसी चौड़े व छिछले बर्तन में 5-7 लीटर पानी में एक किलोग्राम एजोटोबैक्टर व एक कि.ग्रा पीएसबी(फास्फेट घुलनशील जीवाणु) 250 ग्राम गुड़ के साथ मिलाकर घोल बना लेते हैं। इसके उपरान्त नर्सरी से पौधों को उखाड़कर तथा जड़ों में मिट्टी साफ करने के पश्चात 50-100 को बंडल में बाँधकर जीवाणु खाद के घोल में 10 मिनट तक डुबा देते हैं।

कन्द उपचार : गन्ना, आलू, अदरक, घुइयां (अरबी) जैसी फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग हेतु कन्दों को उपचारित किया जाता है। एक किलोग्राम एजोटोबैक्टर व एक किग्रा पीएसबी जैव उर्वरकों को 20-30 लीटर घोल में मिला लेते हैं। इसके उपरान्त कन्दों को 10 मिनट तक डुबो देते हैं। इसके बाद तुरन्त रोपाई कर देते हैं।

मृदा उपचार विधि : 5-10 किलोग्राम जैव उर्वरक व 70-100 किग्रा मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण तैयार करके रात भर छोड़ दें। इसके बाद अन्तिम जुताई पर खेत में मिला देते हैं।

जैविक खाद के लाभ: जैविक खाद मिट्टी में लाभकारी जीवाणु की संख्या बढ़ा कर उसकी उर्वरकता को बढ़ाते हैं। रासायनिक उर्वरक के मुकाबले जैविक खाद बेहद सस्ते होते हैं और यह रासायनिक खादों विशेष रूप से नाइट्रोजन और फास्फोरस की ज़रूरत का 20-25 प्रतिशत तक पूरा करते हैं। जैविक खाद के प्रयोग से अंकुरण शीघ्र होता है तथा उपज में लगभग 10-15 प्रतिशत की वृद्धि होती है। जैविक खादें मृदा के पोषक चक्र को पुन: स्थापित करती हैं और जैव पदार्थों का निर्माण करती हैं। वर्तमान की ज़रूरतों को पूरा करते हुए जैविक खाद भविष्य के लिए भी मृदा की गुणवत्ता बनाये रखते हैं।

जैविक उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियां : जैव उर्वरक को छाया में सूखे स्थान पर रखें; फसल के अनुसार ही जैव उर्वरक का चुनाव करें; उचित मात्रा का प्रयोग करें; जैव उर्वरक खरीदते समय उर्वरक का नाम बनाने की तिथि व फसल का नाम इत्यादि ध्यान से देख लें; तथा जैव उर्वरक का प्रयोग समाप्ति की तिथि के पश्चात न करें।

निष्कर्ष : ये सत्य है कि हम पूर्णरूप से रासायनिक खाद को छोड़ जैविक खाद पर निर्भर नहीं हो सकते परन्तु यदि हम दोनों रासायनिक तथा जैविक खाद का उचित मात्रा में प्रयोग करें तो किसानों को आर्थिक लाभ होगा और मृदा की उर्वरता तथा संरचना पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। जैविक खाद बाज़ार में उपलब्ध है, परन्तु धोखाधड़ी से बचने के लिए तथा उपयोग की उचित जानकारी के लिए किसान अपनी फसल के अनुसार जैविक खाद नज़दीकी कृषि विज्ञान केंद्र से ले सकते हैं। हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय में सूक्ष्मजीव विभाग भी किसानों को उचित दामों में जैव उर्वरक उपलब्ध कराता है। जैव उर्वरकों के उपयोग के बारे में अधिक जानकारी हेतु टोल फ्री नंबर 1800-180-3001 पर संपर्क करें।

[1]विस्तार शिक्षा विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

गेहूं में अड़ियल गुल्ली डंडे के लिए नए खरपतवारनाशक- शगुन एवं अवकीरा

✍ **सतबीर पूनिया, सुशील कुमार सिंह एवं मनजीत**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गेहूं हरियाणा प्रांत की लगभग 2.5 मिलियन क्षेत्र में रबी मौसम के दौरान बोई जाने वाली मुख्य फसल है। खरपतवारों द्वारा पहुंचाई जाने वाली क्षति गेहूं फसल के कम उत्पादन का मुख्य कारक है। गेहूं में मुख्यत: दो प्रकार के खरपतवार पाए जाते हैं – संकरी पत्ती वाले एवं चौड़ी पत्ती वाले।

संकरी पत्ती वालों में मुख्यत: गुल्ली डंडा (कनकी) मुख्य खरपतवार है, जो कि गेहूं की फसल को 10–80 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचाता है। वर्ष 1990 में इस खरपतवार में आईसोप्रोट्यूरोन नामक खरपतवारनाशक के प्रति प्रतिरोधकता आने से तीन अन्य खरपतवारनाशकों (क्लोडीनाफॉप, फीनोक्साप्रॉप एवं सल्फोसल्फ्यूरोन) की सिफारिश की गई थी। इन तीनों खरपतवारनाशकों ने वर्ष 2005 तक गुल्ली डंडे का अच्छा नियंत्रण किया। किंतु इसके बाद इन खरपतवारनाशकों के लगातार व कम मात्रा में प्रयोग करने से इस खरपतवार में फिर से प्रतिरोधकता आ गई।

हरियाणा के करनाल, कुरुक्षेत्र, अंबाला, फतेहाबाद, जींद, पानीपत, यमुनानगर, हिसार, रोहतक व पलवल ज़िलों में क्लोडीनाफॉप खरपतवारनाशक की तीन–गुणा मात्रा प्रयोग करने के बाद भी गुल्ली डंडा (कनकी/मंडूसी) का नियंत्रण नहीं हो सका।

वर्ष 2014 में विश्वविद्यालय द्वारा बिजाई के तुरन्त बाद प्रयोग में लाए जाने वाले खरपतवारनाशक पैंडिमैथलिन 2 लीटर/एकड़ की दर से सिफारिश की गई। परंतु खेत में उचित नमी का न होना, पानी की कम मात्रा का प्रयोग करना व खेत में धान के डंठल होने की वजह से यह खरपतवारनाशी भी गुल्ली डंडे के नियंत्रण के लिए अधिक कारगर साबित नहीं हुआ।

परीक्षणों में यह भी पाया गया कि वर्ष 2005 में सिफारिश किया गया खरपतवारनाशक अटलांटिस 70 प्रतिशत नियंत्रण करता है परंतु सिफारिश की गई मात्रा से थोड़ा ज़्यादा, दोबारा छिड़काव व गीली भूमि में छिड़काव करने से गेहूं की फसल को नुकसान पहुंचाने की वजह से किसानों का इस खरपतवारनाशक के प्रति मोहभंग हो गया है। हरियाणा प्रांत के विभिन्न ज़िलों से गुल्ली डंडे के बीज इकट्ठा करने के बाद खरपतवारनाशकों के प्रति प्रतिरोधकता के परीक्षण में यह पाया गया है कि अधिकतर ज़िलों में क्लोडिनाफॉप व सल्फोसल्फ्यूरोन के प्रति प्रतिरोधकता अधिक है परंतु अटलांटिस के प्रति प्रतिरोधकता कम आंकी गई है। वहीं नए खरपतवारनाशक एक्सियल में भी गुल्ली डंडे के दोबारा फुटाव की समस्या पाई गई है। इन कारकों को ध्यान में रखते हुए विश्वविद्यालय द्वारा नए खरपतवारनाशक शगुन (क्लोडिनाफॉप+मैट्रिब्यूजीन) 200 ग्राम/एकड़ बिजाई के 35 दिन बाद एवं अवकीरा 60 ग्राम/एकड़ + पैंडीमैथलीन 2 लीटर/एकड़ का छिड़काव बिजाई के तुरन्त बाद करने से अड़ियल गुल्ली डंडे का 80 से 90 प्रतिशत नियंत्रण हो जाता है। यह दोनों खरपतवारनाशक गुल्ली डंडे के साथ–साथ चौड़ी पत्ती वाले घास जैसे कि बाथु, जंगली पालक, मैया, मैना आदि का भी नियंत्रण करते हैं।

हरियाणा के विभिन्न ज़िलों में इन खरपतवारनाशकों द्वारा गुल्ली डंडे के नियन्त्रण में कमी पाई गई है। नांगला (फतेहाबाद), पीपलथा (जींद) व दनौदा इत्यादि जगहों के बीज का जब परीक्षण किया गया तो यह पाया गया कि अटलांटिस एवं एक्सियल की तुलना में, क्लोडिनाफॉप व सल्फोसल्फ्यूरोन द्वारा नियंत्रण अधिक घट गया है।

कुल 16 स्थानों के बीजों के परीक्षण में 10 स्थानों पर यह पाया गया कि क्लॉडिनाफॉप (टोपिक) 160 ग्राम/एकड़ द्वारा केवल 20–65 प्रतिशत नियंत्रण पाया गया। क्लोडिनाफॉप की सिफारिश से दोगुनी मात्रा द्वारा भी 33–65 प्रतिशत नियंत्रण पाया गया। छ: जगहों (नांगला–1, नांगला–2, पीपलथा–1, पीपलथा–2, लुदास एवं धौंस के गुल्ली डंडे पर क्लोडीनाफॉप की दोगुनी मात्रा पर भी संतोषजनक नियंत्रण नहीं हुआ। वहीं लुदास (हिसार) एवं रसीदां (जींद) के गुल्ली डंडे पर सल्फोसल्फ्यूरोन (लीडर) की भी दोगुनी मात्रा से कोई विशेष नियंत्रण नहीं हुआ। अटलांटिस की सिफारिशशुदा मात्रा द्वारा रसीदों व कालवण से एकत्रित किए गए बीज पर केवल 31–39 प्रतिशत नियंत्रण पाया गया। गुल्ली डण्डा में हरियाणा के विभिन्न हिस्सों में सभी खरपतवारनाशकों के प्रति प्रतिरोधकता आ गई है। इसको ध्यान में रखते हुए विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा किये गए परीक्षणों नए खरपतवारनाशक शगुन व अवकीरा काफी कारगर सिद्ध हुए।

शगुन का हरियाणा के विभिन्न 11 जगहों पर परीक्षण किया गया जिसकी तुलना किसानों द्वारा प्रयोग में लाई जा रही वेस्टा से की गई, जिसमें शगुन ने 89.5 प्रतिशत नियंत्रण किया व वेस्टा ने 60.7 प्रतिशत नियंत्रण किया जिससे पैदावार में 972 कि.ग्रा./हैक्टेयर की वृद्धि हुई। शगुन ने गुल्ली डंडे के अलावा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर भी 79.5 प्रतिशत नियंत्रण किया। परीक्षण के दौरान साथ में यह भी पाया गया कि मृदा में अधिक नमी होने पर शगुन द्वारा 10–20 प्रतिशत फसल को हानि पहुंचाई गई जो कि एक महीने बाद पुन: ठीक हो गई।

वर्ष 2017–18 में अवकीरा (60 ग्राम/एकड़) व पैंडीमेथलिन (2 लीटर प्रति एकड़) को मिलाकर कैथल, नरवाना, अंबाला एवं टोहाना में किसानों के खेतों पर 7 जगह परीक्षण किए गए। इसमें पाया गया कि अवकीरा के अकेले प्रयोग में गुल्ली डंडे का 88 प्रतिशत नियंत्रण व इसके साथ बिजाई के 35 दिन बाद दूसरे खरपतवारनाशक के प्रयोग करने पर 92 प्रतिशत नियंत्रण पाया गया। वहीं बिजाई के तुरंत बाद पैंडीमैथलीन (2 लीटर/एकड़) व 35 दिन बाद सिफारिशशुदा खरपतवार से केवल 68 प्रतिशत नियंत्रण पाया गया। अवकीरा व पैडीमैथलिन का एक साथ प्रयोग करने पर गेहूं की 53.6 (क्विंटल/हैक्टेयर पैदावार मिली, जबकि पैंडीमैथलीन 2 लीटर/एकड़ व 35 दिन बाद सिफारिशशुदा खरपतवारनाशक प्रयोग करने पर केवल 50.5 क्विंटल/हैक्टेयर पैदावार प्राप्त हुई।

अत: इन परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसान गेहूं की बिजाई के तुरंत बाद पैंडीमैथलीन (2 लीटर)+अवकीरा (60 ग्राम) प्रति एकड़ का 250 लीटर पानी में घोलकर प्रयोग करें या बिजाई के 35 दिन बाद शगुन 200 ग्राम/एकड़ का प्रयोग करें। ध्यान रखें कि अवकीरा के प्रयोग में खेत अच्छी तरह तैयार हो एवं साथ ही खेत में उचित एवं पर्याप्त नमी हो। अगर खेत में नमी की कमी हो तो पानी की मात्रा 250 लीटर/एकड़ का प्रयोग करें तथा गेहूं की कुछ किस्में जैसे कि एच डी–2851, बरबट, एच डी–2894 पर शगुन का प्रयोग न करें।

(पृष्ठ 21 का शेष)

बच्चों के लिए बहुत उपयोगी होता है। इसके सेवन से हृदय से सम्बन्धित बीमारियों का खतरा कम हो जाता है। डायबिटीज़ से पीड़ित रोगियों के लिए भी जई बहुत फायदेमंद है।

रागी : रागी को सबसे पौष्टिक अनाजों में से एक माना जाता है। इसमें मौजूद प्रोटीन शरीर में आसानी से पच जाता है। इसमें मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत ज़रूरी कई एमिनो एसिड पाए जाते हैं जिनकी दूसरे अनाजों में कमी होती है। इसमें खनिज लवण भी बड़ी मात्रा में पाए जाते हैं, खासकर कैल्शियम जो दूसरे अनाजों के मुकाबले पांच से तीन गुणा अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसलिए हड्डियों के रोगियों को रागी को अपने भोजन में ज़रूर शामिल करना चाहिए। जो लोग ऑस्टेपोरेसिस और ऑस्टेपेनिया के शिकार हैं उन्हें रागी खाना चाहिए। रागी का इस्तेमाल बच्चों और बुजुर्गों के भोजन में होना चाहिए। रागी में फॉस्फोरस और आयरन भी अधिक होता है। यह मीनोपॉज़ के बाद महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए भी उपयोगी है। जो लोग लेक्टोज़ की समस्या से पीड़ित होते हैं उनके लिए रागी कैल्शियम का ज़बरदस्त स्रोत है।

अत: मोटे अनाज स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी हैं। इसलिए इन्हें गेहूं और चावल के साथ अपने भोजन में शामिल करें।

कृषि वानिकी बहुउपयोगी वृक्ष

✍ **बिमलेन्द्र कुमारी एवं हरीश ओझा**
कृषि वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि वानिकी, कृषि भूमि पर वृक्षारोपण के साथ-साथ पशु पालन को सम्मिलित कर, किसानों को अधिक लाभ अर्जित कराने हेतु एक वैज्ञानिक पद्धति है। जिसके तहत विभिन्न प्रकार की फसलों के साथ बहुत सी बहु उपयोगी वृक्ष प्रजातियां, विभिन्न प्रकार से लगाई जाती हैं।

इस प्रकार वृक्षों को खेतों में लगाने से किसानों को इमारती लकड़ी, ईंधन व अन्य आवश्यकताओं के लिए लकड़ी व दूसरे वृक्ष आधारित उत्पादों की प्राप्ति भी हो जाती है।

कृषि वानिकी के लिए वृक्षों का चयन :

कृषि वानिकी के लिए वृक्षों का चुनाव करने में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है क्योंकि वृक्षों का जीवन काल लम्बा होता है। इसलिए यदि सही प्रकार की प्रजातियों को न चुना गया तो उन्हें निकालना भी संभव नहीं हो पाएगा।

1. ऐसे बहुउपयोगी वृक्षों का चयन करें, जो क्षेत्र की जलवायु में आसानी से पनप सकें, विशेषकर जब बाहरी वृक्षों को लगाना हो।
2. लगाने से पहले किसानों की आवश्यकताओं को समझ कर ही वृक्षों का चुनाव करना चाहिए व वृक्ष उत्पादों/लकड़ी का सही मूल्य मिलने के लिए बाज़ार का रुख भी देखना चाहिए।
3. ऐसे बहुउपयोगी वृक्ष ही चुने जायें, जो बिना अधिक मेहनत व लागत के आसानी से बढ़ सकें।
4. ऐसे वृक्ष, जिन के बीज/कलमें इत्यादि आसानी से उपलब्ध हो सकें।

कृषि वानिकी में विभिन्न प्रकार के डिज़ाइन में बहुउपयोगी वृक्षों के उपयोग पर आधारित विभिन्न कृषि वानिकी की पद्धतियां क्रमशः इस प्रकार हैं :

1. कतारों में वृक्षारोपण : इस विधि में वृक्षों का कम फासले पर कतारों में रोपण किया जाता है व इन्हें छोटी हैज की तरह रखा जाता है। इस प्रकार होने वाली कटाई-छंटाई से प्राप्त पत्तियां पशु चारा में इस्तेमाल की जाती हैं व लम्बे अन्तराल पर कटाई से प्राप्त लकड़ी विभिन्न उपयोग में लाई जा सकती है। वृक्षों का चुनाव निम्नलिखित विशेषताओं के आधार पर करना चाहिए : सरल व सस्ता रोपण वाले वृक्ष; तेज़ बढ़वार वाले वृक्ष; बहुत अच्छा फुटाव लेने वाले वृक्ष; नाईट्रोजन को संचित करने वाले वृक्ष; पशुओं के खाने लायक पत्तियों वाले वृक्ष; गहराई तक जड़ों वाले वृक्ष; एवं सघन (कम स्पेसिंग) में लगाये जा सकने वाले वृक्ष।

2. घरेलू बगीचे व अन्य बहुपरतीय प्रणाली : घरों के आसपास उगाए जाने वाले बहुउपयोगी वृक्ष, जिसके क्षेत्र के अनुसार विभिन्न फल, फूल, बीजों व लकड़ी इत्यादि के लिए उपयोग होने वाले स्थानीय वृक्ष शामिल किए जाते हैं। बहुत से किसान प्रायः हर प्रकार के वृक्षों को अपने घरेलू निवास स्थल के आसपास लगाते हैं। इन वृक्षों के नीचे की परत में सब्जियां व फल वृक्ष भी लिए जाते हैं, जो छाया सहन कर सकते हैं। इस प्रकार के वृक्षों की निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिएं :

1. नीचे की परत में लगाये जाने वाले पौधों के लिए सामान्य छाया प्रदान करने वाले वृक्ष।
2. गहरी जड़ों वाले वृक्ष।
3. नाईट्रोजन स्थिर करने की योग्यता वाले वृक्ष।

3. जीवित बाड़ : कुछ इलाकों में किसान खेतों के चारों ओर जीवित बाड़ तैयार करते हैं। जिसमें विभिन्न स्थानीय बहुउपयोगी वृक्षों को लगाया जाता है। इनका उद्देश्य फसलों का पशुओं इत्यादि से बचाव व पेड़ों से विभिन्न प्रकार के उत्पादों के लिए किया जाता है। इनकी वांछित विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं :

1. सामान्य प्रकार की हानि को सहने की क्षमता।
2. तेज़ बढ़वार।
3. फसलों के साथ लगाए जाने योग्य।
4. चारा उत्पादन वाले।
5. आग सहन करने की क्षमता।
6. कंटीले कांटों युक्त पेड़।

4. वायु पट्टियां : वायु पट्टियां वृक्षों की कई कतारों का एक साथ रोपण करके वायु से होने वाले नुकसान को कम करना, इसे वायु पट्टिया कहते हैं। इन वृक्ष कतारों में वृक्षों के साथ-साथ छोटी झाड़ियों, बेलों इत्यादि को भी सम्मिलित किया जाता है, ताकि एक दीवार की भांति यह पट्टियां वायु वेग को कम करके इस कारण होने वाली फसलों के व फल वृक्षों के नुकसान को कम कर सकें। वायु पट्टियां उन क्षेत्रों में लगाई जाती हैं, जहां वायु का वेग बहुत अधिक होता है व फसलों के लिए हानिकारक होता है। वायु पट्टियों से वृक्षों की ऊंचाई से 15-20 गुणा ज्यादा लम्बाई तक वायु प्रभाव में फायदा होता है। वृक्षों के गुण निम्न प्रकार से हों:

1. वायु वेग सहनशील वृक्ष।
2. ज़्यादा फैलाव वाले वृक्ष।
3. छोटी छतरी वाले वृक्ष।
4. जल्द बढ़वार लेने वाले वृक्ष।

5. वृक्ष व पशुपालन : शुष्क इलाकों में प्रायः इस प्रकार के वृक्ष आधारित कृषि फार्म पाए जाते हैं, जहां वृक्षों की छाया के नीचे पशुओं की चारागाहें रखी जाती हैं। गाय, भैंस, बकरी, भेड़ इत्यादि इस प्रकार के सिस्टम में पाले जाते हैं।

तालिका 1: बहुउपयोगी व वायु पट्टियों व जीवंत हैजेन में उपयोगी वृक्ष

प्रजाति	जलवायु क्षेत्र	उपयोग
देसी कीकर	शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क	इमारती व ईंधन लकड़ी
नीम	अर्द्ध-शुष्क	इमारती लकड़ी, खाद, सुगंधित तेल, ईंधन
जोड़-तोड़	आर्द्र, उष्ण व लवणीय	इमारती व ईंधन लकड़ी
सफेदा	आर्द्र, उष्ण	इमारती व ईंधन लकड़ी
जंगली जलेबी	आर्द्र, उष्ण	भोजन चारा व ईंधन
सिल्वर ओक	जल मग्न व लवणीय	इमारती, ईंधन लकड़ी
सुबबूल	आर्द्र, उष्ण	चारा, ईंधन व लकड़ी

तालिका 2 : चारा प्रदान करने वाले कुछ बहुउपयोगी वृक्ष

प्रजाति	जलवायु क्षेत्र	उपयोग
सिरस	आर्द्र, उष्ण	फर्नीचर, ईंधन, लकड़ी
कैलीएंडरा	आर्द्र, उष्ण	फर्नीचर, ईंधन, लकड़ी
शीशम	अर्द्ध-उष्ण	फर्नीचर, ईंधन, लकड़ी
सुबबूल	आर्द्र, उष्ण	ईंधन, इमारती लकड़ी
जाड़ी	उष्ण, अर्द्ध-उष्ण	हवा पट्टियां
सेस्बेनिया	आर्द्र, उष्ण	ईंधन व भोजन
बेर	अर्द्ध-उष्ण	ईंधन व भोजन

कृषि ज्ञान प्रसार में सोशल मीडिया की शक्ति

✍ **सुनेश, अशोक बल्हारा एवं सज्जन सिंह**
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान
हिसार

कृषि आधारित भारत की अर्थव्यवस्था के लिए वृद्धि दर बनाए रखना बहुत महत्वपूर्ण है। कृषि उत्पादन में विकास दर के लिए इस क्षेत्र में कार्यरत किसानों को आधुनिक और प्रासंगिक जानकारी देना आज के समय में एक विचार का विषय है क्योंकि सामाजिक माध्यम से दी जाने वाली जानकारी शक के दायरे में है। इस समय में सूचनाओं का प्रसार और प्रचार इस बात पर निर्भर करता है कि हम किस प्रकार की सूचना संचार प्रौद्योगिक सुविधाओं का प्रयोग करते हैं। इस समय में सबसे अधिक सूचना के प्रसार का माध्यम सोशल नेटवर्किंग साईटस का उपयोग करना है। परम्परागत रुप से संचार के माध्यमों में टेलीविजन, रेडियो और समाचार पत्रों का वर्चस्व रहा है। हाल के वर्षों में प्रौद्योगिकी जागरूकता और कम्प्यूटर साक्षरता सभी जगह पर बढ़ रही है

आज के समय में लोगों द्वारा सोशल मीडिया के विभिन्न रूपों का उपयोग समाचार, शिक्षा और कृषि से सम्बन्धित जानकारी हासिल करने में किया जा रहा है। सोशल मीडिया एक ऐसा मंच है जिस पर अधिक से अधिक अलग-अलग समुदाय के लोग अपने विचारों, अनुभवों और नई-नई तकनीकों को सांझा करते हैं। हम ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जहां सरकार डिजिटल इंडिया अभियान पर ज़ोर दे रही है और सुदूर ग्रामीण आंचल में ग्राम पंचायत व अन्य सरकारी सुविधाओं को इंटरनेट और सोशल प्लेट फॉर्म से जोड़ने के लिए कार्यरत है। इस अभियान का मकसद भारत के हर कोने के व्यक्ति को ऐसे मंच पर लाना है जहां वह पूरी दुनिया के साथ जुड़ सके।

कृषि के क्षेत्र में भी सोशल मीडिया अहम् भूमिका निभा रहा है। आज का किसान जागरूक है। वह अपने कृषि व्यवसाय को अधिक लाभकारी बनाने के लिए स्मार्ट फोन के माध्यम से आधुनिक तकनीकें और जानकारियां जुटाने के लिए प्रयासरत है। कृषि के क्षेत्र में विस्तार कार्यकर्त्ता हर मुमकिन कोशिश करते हैं कि वह अपने क्षेत्र से सम्बन्धित आधुनिक जानकारियां किसानों को जल्दी से जल्दी पहुंचा सकें। परंतु विस्तार कार्यकर्त्ताओं की संख्या सीमित होने के कारण हर किसान के पास पहुंचना नामुमकिन है। इस समस्या को दूर करने के लिए विस्तार कार्यकर्त्ताओं ने सूचना का संचार और प्रसार की आधुनिक तकनीकों को अपनाना शुरू किया और किसानों के साथ सोशल मीडिया जैसे प्लेटफार्म पर विचार सांझा करने शुरू किए। सोशल मीडिया साईट पर अलग-अलग समुदाय, क्षेत्र और भाषा के किसान जुड़े हुए हैं ।

पेशेवर किसान जिन्होंने अपने कृषि और पशुपालन व्यवसाय को नई-नई तकनीकों का प्रयोग करके लाभदायक बना दिया है वह दूसरे किसानों के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं। प्रगतिशील किसान सोशल मीडिया जैसे यू-ट्यूब, फेसबुक, व्हाट्सअप, ट्विटर और ब्लाग जैसे और मंचों को उपयोग करके अपने अनुभव, सफल व्यवसाय की कहानी और अपने उत्पादों की जानकारियों के बारे में पोस्ट करते हैं ताकि अधिक से अधिक लोग उनके व्यवसाय के बारे में जान सकें। वर्तमान युग में अधिक से अधिक किसान तकनीकी ज्ञान का भरपूर फायदा उठा रहे हैं और उपभोक्ताओं से व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ने के लिए सोशल मीडिया का प्रयोग कर रहे हैं। कृषि वैज्ञानिकों, विद्वानों को कृषि सम्बन्धित मुद्दों के संदेश को व्यक्त करने के लिए जितना सम्भव हो उतना ही डिजिटल तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि डिजिटल तकनीक में इतनी क्षमता है कि उनका प्रयोग करके कृषि वैज्ञानिक, कृषि विस्तार कार्यकर्त्ता और किसान आपस में एक मज़बूत कड़ी की तरह जुड़कर एक दूसरे के अनुभवों को सांझा करके एक नई कृषि विस्तार प्रणाली बना सकते हैं।

केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान ने भी सोशल मीडिया की ताकत को समझते हुए इस मंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज की है। संस्थान द्वारा किसानों को वैज्ञानिक तरीके से भैंस पालन पर प्रशिक्षण दिया जाता है। हर महीने किसानों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। "मेरा गांव मेरा गौरव" योजना के तहत अपनाए गए गांवों में जाकर वहां के किसानों को संस्थान में किए गए अनुसंधान कार्यों और उनसे होने वाले फायदों के बारे में जानकारियां देते हैं। संस्थान में वैज्ञानिकों और विस्तार वैज्ञानिकों की सीमित संख्या होने के कारण कुछ ही किसानों तक वैज्ञानिक अपने ज्ञान का प्रसार कर सकते हैं।

इस समस्या का निदान करने के लिए संस्थान ने सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के तहत सोशल मीडिया का सहारा लिया ताकि अधिक से अधिक पशुपालक किसानों से जुड़ सकें और उन्हें अच्छी भैंस पालन पद्धति के बारे में अवगत करा सकें। इस मंच का इस्तेमाल करके आज संस्थान लाखों किसानों से जुड़ा हुआ है। संस्थान यू-ट्यूब, फेसबुक, व्हाट्सअप जैसे मंचों को अपनाकर पशुपालक किसानों की पशुओं से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने की कोशिश कर रहा है। यह ज़रूरी नहीं है कि किसानों को एक साथ सभी सोशल मीडिया मंच पर जुड़ना है। वह अपने हित के अनुसार अपने अनुभव और अपनी शैक्षिक पृष्ठभूमि के अनुसार किसी भी उचित साधन का प्रयोग करके अपने कृषि और पशुपालन व्यवसाय को लाभकारी बना सकता है। ऐसे सैंकड़ों उदाहरण अखबारों में, टेलीविजन पर, सोशल मीडिया साईट्स पर दिखाते हैं जिनको देखकर, समझकर किसान अपनी ज़रूरत के हिसाब से अमल में ला सकते हैं।

संस्थान ने सोशल मीडिया के दो मुख्य साईट्स का इस्तेमाल करके ज़्यादा से ज़्यादा किसानों से जुड़ने का प्रयास किया है।

फेसबुक : फेसबुक पर हज़ारों लाखों लोगों तक एक साथ जुड़ा जा सकता है। इस पर लोग अपने अनुभव, ज्ञान और विचार एक दूसरे लोगों के साथ सांझा करते हैं। किसान अपनी समस्याओं को मंच पर रखते हैं और बाकी किसान साथियों से, वैज्ञानिकों से सलाह मांगते हैं। केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान ने फेसबुक के माध्यम से किसानों, पशुचिकित्सा और वैज्ञानिकों का समूह बनाया हुआ है जिसमें लगभग 54,000 लोग शामिल हैं। प्रगतिशील किसान, वैज्ञानिक तथा अन्य किसान अपने-अपने कार्य से सम्बन्धित पोस्ट, संदेश और वीडियो पोस्ट करते हैं। फेसबुक संभावित उपभोक्ताओं के साथ व्यक्तिगत रूप से जुड़ने और उनकी ज़रूरतों और वरीयताओं के बारे में जानने का एक अच्छा साधन है। आज स्मार्टफोन और वायरलेस इंटरनेट तकनीक कम कीमत पर उपलब्ध होने के कारण लोगों को आपस में जोड़ना आसान हो गया है। पशुपालन से सम्बंधित प्रगतिशील किसान अपने अच्छी नस्ल के पशुओं का प्रचार वीडियो या पोस्ट के माध्यम से कर सकते हैं और डेयरी व्यवसाय के बारे में दूसरे लोगों को सूचना दे सकते हैं।

यू-ट्यूब: यू-ट्यूब सोशल मीडिया का ही एक उपकरण है जिसकी सहायता से लोग अपने कार्यों जैसे कि खेती के बारे में, पशुपालन के बारे में, बागवानी और अन्य क्षेत्रों की वीडियो बनाकर प्रचार और प्रसार करते हैं दूसरे लोग इन वीडियो को देख सकते हैं। वीडियो के बारे में टिप्पणी कर

सकते हैं और उन वीडियो को सांझा कर सकते हैं। केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान ने भी यू-ट्यूब पर अपना चैनल बनाया हुआ है। उपभोक्ता अपनी पसंद के अनुसार किसी भी चैनल की सदस्यता ले सकते हैं। इस तरह जब भी चैनल पर कोई नया वीडियो डाला जाता है तुरंत इसकी सूचना चैनल से जुड़े सदस्यों तक पहुंच जाती है। केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान ने यू-ट्यूब चैनल पर वैज्ञानिक तरीके से भैंस पालन पर कई वीडियो डाल रखे हैं।

संस्थान के चैनल की सदस्यता लेने वालों की संख्या लगभग 70,000 है। इस चैनल को शुरू करने का उद्देश्य संस्थान की किसानों तक पहुंच बनाना था। इन वीडियो के माध्यम से वैज्ञानिकों ने पशु पालकों को यह समझाने की कोशिश की है कि कैसे वैज्ञानिक पद्धति अपनाकर आप अपने भैंस पालन व्यवसाय को लाभकारी बना सकते हैं। भैंस पालन व्यवसाय में किसानों की सबसे बड़ी समस्या भैंसों में गर्मी की पहचान करने में आती है। अगर समय पर यह पहचान हो जाए तो भैंस पालक आर्थिक नुकसान से बच सकता है और हर साल भैंस से कटड़ा या कटड़ी ले सकता है। इस समस्या पर वीडियो बनाया गया है कि कैसे भैंसों में गर्मी की पहचान करें। यह वीडियो बहुत प्रचलित हुआ है, इसको देखने वालों की संख्या लगभग 1 करोड़ 18 लाख है और इस चैनल को देखने वालों की कुल संख्या लगभग 11 करोड़ है । वैज्ञानिक तरीके से भैंस पालन के अलग-अलग पहलुओं पर 29 वीडियो बनाए गए हैं जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं :

भैंस में गर्मी के लक्षणों की पहचान
भैंस पालन में पांच मुख्य बातें
भैंस पालन में फूल दिखाने की समस्या और समाधान
भैंस में नस्ल सुधार का आधार-कृत्रिम गर्भाधान
भैंस से हर साल बच्चा कैसे पाएं
भैंस में दूध का बनना
भैंसों में थनैला रोग से बचने के उपाय
भैंस में कृत्रिम गर्भाधान कब करवाएं

यू-ट्यूब पर किसान अगर कृषि एवं पशुपालन से सम्बन्धित कोई वीडियो देखना चाहते हों तो यू-ट्यूब एक से अधिक विकल्प दिखाता है इनमें से जो विकल्प सबसे अधिक प्रासंगिक है उसे उपभोक्ता देख सकता है और उस चैनल की सदस्यता ले सकता है। वीडियो देखने के बाद अगर उपभोक्ता के मन में कोई सवाल आता है तो वह अपना सवाल टिप्पणी के रूप में पूछ सकता है तथा उस पर चर्चा कर सकता है।

यू-ट्यूब पर सीधा प्रसारण सुविधा : यू-ट्यूब ने चैनल बनाने वालों और उपभोक्ताओं के बीच और अधिक सामंजस्य और सम्बन्ध बनाने के लिए सीधा प्रसारण जैसी सुविधा दी है। इस सुविधा का लाभ उठाकर कृषि और पशुपालन से सम्बन्धित वैज्ञानिक अपनी तकनीकों के बारे में अनुभवों और ज्ञान को अधिक से अधिक किसानों तक पहुंचा सकते हैं। सीधे प्रसारण की घोषणा का प्रचार हर माध्यम से करना चाहिए ताकि उस विशेष समय पर अधिक से अधिक किसान सीधे प्रसारण को देखकर लाभ उठा सकें। वैज्ञानिक और किसान पारस्परिक विचार विमर्श कर सकते हैं। सीधे प्रसारण कार्यक्रम की घोषणा संस्थान या व्यक्ति विशेष अपने वैबसाइट ,व्हाट्सअप या फेसबुक समूह के माध्यम से कर सकता है।

सूचना के प्रचार और प्रसार के अलावा सोशल मीडिया विपणन के क्षेत्र में भी अहम भूमिका निभा रहा है। जिन प्रगतिशील किसानों ने अपना व्यवसाय शुरू किया हुआ है वह अपने उत्पादों और सेवाओं का विपणन सोशल मीडिया के माध्यम से कर सकते हैं।

शतावरी की जड़ के पाऊडर के मूल्य संवर्धित खाद्य पदार्थ व उपयोग

✍ **प्रियंका रानी एवं वर्षा रानी**
खाद्य एवं पोषण विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्तमान समय में स्त्रियों व किशोरियों में मासिक धर्म संबंधित अनियमितताएं दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। गर्मधारण न कर पाना, गर्भपात, समय पूर्व प्रसव होना, प्रसव पश्चात् पर्याप्त मात्रा में दूध का उत्पन्न न होना भी स्त्रियों से संबंधित प्रमुख समस्याएं हैं। इसके अतिरिक्त रजोनिवृत्ति से संबंधित समस्याएं जैसे कि अचानक अत्यधिक पसीना आना, हृदय गति का बढ़ना, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन भी बढ़ती समस्याओं में से एक है। इन सबका प्रमुख कारण असंतुलित आहार व मानिसक तनाव है, जिससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है तथा हार्मोन का स्तर असंतुलित हो जाता है। शतावरी एक आयुर्वेदिक औषधि है जो कि महिलाओं के लिए प्रकृति का एक वरदान है। यह महिलाओं में असंतुलित हार्मोन को संतुलित करके ऊपरलिखित सभी समस्याओं का निदान करती है तथा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाती है। सामान्यत: शतावरी की जड़ को सुखा कर व इसका पाऊडर बनाकर प्रयोग में लाया जाता है। अगर शतावरी की जड़ को सुखाने से पहले गर्म पानी में 3-4 मिनट रखा जाए तो इसका कड़वापन कम हो जाता है तथा उसकी गुणवत्ता भी बढ़ जाती है। इसकी जड़ के पाऊडर से मूल्य संवर्धित खाद्य पदार्थ भी बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार बनाए गए खाद्य पदार्थ स्त्रियों के लिए स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। शतावरी पाऊडर के प्रयोग से कुछ पारम्परिक खाद्य पदार्थ बनाने की विधि इस प्रकार है :

लड्डू : गेहूं का आटा (500 ग्राम), बेसन (500 ग्राम), घी (600 ग्राम), पिसी हुई चीनी/खांड (600 ग्राम), शतावरी पाऊडर (50-100 ग्राम)

विधि : 1. गेहूं के आटे और बेसन को अलग-अलग भूनें, 2. कढ़ाही में घी गर्म करें और भूने हुए गेहूं के आटे व बेसन को घी में अच्छी तरह से मिलाएं, 3. मिश्रण को थोड़ा ठंडा करके इसमें पिसी हुई चीनी/खांड और शतावरी पाऊडर मिलाएं, 4. अब मिश्रण की गोलियां बना करके लड्डू का आकार दें।

पंजीरी : गेहूं का आटा (1000 ग्राम), घी (300 ग्राम), पिसी हुई चीनी (300 ग्राम), शतावरी पाऊडर (50-100 ग्राम)

विधि : 1. गेहूं के आटे को घी के साथ भूनें, 2. आटे को थोड़ा ठंडा करके इसमें पिसी हुई चीनी और शतावरी पाऊडर अच्छी तरह मिलाएं, 3. अब पंजीरी को बंद डिब्बे में रख दें।

हलवा : गेहूं का आटा (100 ग्राम), घी (55 ग्राम), चीनी (50 ग्राम), पानी (300-400 मि.ली.), शतावरी पाऊडर (5-10 ग्राम)

विधि : 1. कढ़ाही में घी को गर्म करें, 2. अब आटे को घी में डालकर पकाएं। जब आटा पक जाए तो इसमें गर्म पानी डालें व अच्छी तरह से मिला कर पकाएं, 3. जब मिश्रण कढ़ाही छोड़ने लगे तो इसमें चीनी व शतावरी पाऊडर मिलाएं, 4. शतावरी हलवा बन कर तैयार है।

फसल अवशेष न जलाएं – खाद के रूप में प्रयोग करें

✍ **राजकुमार, अनिल कुमार एवं अजीत सिंह सांगवान**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, रेवाड़ी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा प्रदेश भारत देश का एक छोटा सा प्रांत है, यहां की कुल आबादी की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या गांव में निवास करती है। खेती-बाड़ी यहां का मुख्य व्यवसाय है। आज के समय की मुख्य समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या और घटते हुए जोत और इसके साथ-साथ पर्यावरण बचाब मुख्य बिन्दु हैं। यहां पर खरीफ में धान, कपास, बाजरा, मूंग, ग्वार, आदि तथा रबी में सरसों, गेहूं, जौ आदि मुख्य फसले हैं।

आजकल आधुनिकीकरण तकनीकी मशीनों की वजह से कृषि श्रमिकों की कमी एक प्रमुख समस्या है। परिणाम स्वरूप फसल कटाई उपरांत खेतों में भारी मात्रा में दानों के अतिरिक्त फसल अवशेष बच जाते हैं जिन्हें किसान आमतौर पर अपने खेतों में जला देते हैं जोकि नहीं करना चाहिए। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

1. खेतों में खरपतवार कम जमें इसलिए फसल अवशेष जला देना।
2. मृदा/भूमि में होने वाले रोग कम करने के लिए।
3. कम लागत में अगली फसल की बिजाई जल्दी करने के लिए।

किसानों को पता नहीं रहता कि इन फसल अवशेषों को जलाने से कई तरह के मृदा जनित रोग/समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जैसे :

1. वायु/जलवायु परिवर्तन व प्रदूषण-किसानों द्वारा खेतों में फसल अवशेष जलाने से अत्यधिक मात्रा में वायु प्रदूषण होता है। जिसकी बजह से आज जलवायु परिवर्तन हो रहा है जैसे बेमौसमी बरसात व ओलावृष्टि होना इसका प्रमुख कारण बन चुका है। इसके साथ-साथ कार्बन डाईऑक्साईड, नाइट्रोजन ऑक्साइड गैसों का उत्सर्जन ग्लोबल वार्मिंग का कारण बनता है।
2. मृदा पर्यावरण पर दुष्प्रभाव-फसलों के अवशेष जलाने के कारण भूमि में उपस्थित साथी सूक्ष्म जीवों पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिससे कि लाभदायक कीटों की आजकल भारी कमी आती जा रही है।
3. मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की कमी-किसानों द्वारा फसल अवशेष जलाने से भूमि में उपलब्ध प्रमुख पोषक तत्व जैसे नाईट्रोजन, फास्फोरस, गंधक, आदि की कमी हो जाती है। मिट्टी परीक्षण से पाया गया है कि हमारी जमीन में पोषक तत्वों की कमी हो गई है।
4. मृदा में उपलब्ध जैविक कार्बन की कमी-फसल अवशेष जलाने की वजह से हमारी ज़मीन में उपलब्ध मुख्य कार्बनिक पदार्थ की कमी होती जा रही है जिसकी वजह से हमें खेतों में हरी खाद व गोबर की खाद का प्रयोग अधिक करना पड़ता है। यदि किसान इसकी तरफ थोड़ा सा भी ध्यान दें तो हम इन प्राकृतिक कार्बन पदार्थों को बचा सकते हैं और अपने खेतों की उपजाऊ शक्ति बनाए रख सकते हैं।
5. मृदा में भौतिक गुणों पर दुष्प्रभाव - फसल अवशेष जलाने से भूमि ताप में काफी अधिक बढ़वार होती है जिसके कारण मृदा की ऊपरी सतह कड़ी हो जाती है और सघनता में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप भूमि में पानी सोखने की शक्ति कम हो जाती है। हमारी आगे की फसलें कमज़ोर हो जाती हैं।
6. पशुओं के लिए चारे की कमी - यदि किसान फसल अवशेषों को अपने खेतों में जला देते हैं तो पशुओं के लिए सूखे चारे की समस्या हो जाती है।

उपर्युक्त हानिकारक प्रभावों से हमारी कृषि को बचाने के लिए संरक्षित खेती एक अभिनव पहल है। यदि हमारे किसान उपलब्ध फसल अवशेषों को जलाने की बजाय उनको वापस भूमि में रोटावेटर या हैरो से मिला देते हैं तो निम्नलिखित लाभ प्राप्त कर सकते हैं :

1. फसल उत्पादन में वृद्धि - फसल अवशेषों को वापस भूमि में मिलाने से जैविक पदार्थों में वृद्धि के साथ-साथ हमारी आगे लेने वाली फसलों के उत्पादन में भी वृद्धि होती है।
2. कार्बनिक पदार्थों की उपलब्धता में वृद्धि - जैसा कि सर्वविदित है कि कार्बनिक पदार्थ ही एक मात्र ऐसे स्रोत हैं जिनके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों में उपलब्ध हो पाते हैं तथा कम्बाइन द्वारा कटाई किए गए प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में लगभग 1.29 गुणा अन्य फसल अवशेष होते हैं जो कि खेत में सड़कर मृदा कार्बनिक पदार्थो की मात्रा में वृद्धि करते हैं।
3. भूमि में पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि - फसल अवशेषों में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्वों के साथ 0.45 प्रतिशत नलपान की मात्रा पाई जाती है जो कि एक प्रमुख पोषक तत्व है।
4. मृदा उर्वरता में सुधार - फसलों के अवशेषों को भूमि में मिलाने से मृदा के रासायनिक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा के पी.एच. में सुधार होता है।
5. मृदा के भौतिक गुणों में सुधार - मृदा में फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा की परत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा सतह की कठोरता कम करता है, जल धारण क्षमता एवं मृदा वातन में वृद्धि होती है।

इस प्रकार यदि किसान फसलों के अवशेषों को जलाने की बजाय यदि रोटावेटर या हैरो की सहायता से भूमि में मिला देते हैं तो न केवल पर्यावरण में सुधार होगा अपितु भूमि में कार्बनिक पदार्थ की भी कमी नहीं रहेगी। इस प्रक्रिया से सूक्ष्मजीवी अभिक्रियाओं में बढ़ोत्तरी मिलती है जिससे किसान टिकाऊ खेती के साथ-साथ अधिक फसलों का उत्पादन भी ले सकते हैं।

फसल अवशेषों का सदुपयोग/पुन: चक्रण- भूमि के स्वास्थ्य को स्वस्थ रखने के लिए किसान फसल अवशेषों का पुन: चक्रण करके भूमि में सीधा मिलाकर बिछावन के रूप में भूमि सतह पर उपयोग करके अथवा वर्मी कम्पोस्ट खाद बनाकर, फास्फो सल्फो नाईट्रो के गड्ढों में सड़ा कर अच्छी प्रकार का कम्पोस्ट प्राप्त करना चाहिए। जिससे बाद में अलग-2 फसलों में उपयोग करके अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

गेहूं के एक टन अवशेष (भूसे) से 4.8 कि.ग्रा. नाईट्रोजन, 0.7 कि. ग्रा. फास्फोरस और 9.8 कि.ग्रा. कार्बन मोनोऑक्साइड (सी.ओ.) 460 कि.ग्रा. कार्बन डाईऑक्साइड (सी.ओ. 2) 1999 कि.ग्रा. राख और 2 कि.ग्रा. सल्फर डाईऑक्साइड (एस.ओ. 2) उत्पन्न होती है एवं ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार है अत: किसान इन फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उनका पुन: चक्रण कर भूमि में मिलाते हैं तो निश्चित तौर पर पौध-पोषण एवं मृदा स्वास्थ्य सुधार के साथ-साथ पर्यावरण सुरक्षित अथवा टिकाऊ खेती करने में सफलता मिलती है।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, जींद।

ऑर्गेनिक पोषक गृह वाटिका : स्वस्थ भोजन-थाली के लिये अत्यंत आवश्यक

✍ **भरत सिंह घणघस, प्रदीप कुमार चहल एवं सूबेसिंह**[1]
विस्तार शिक्षा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरित क्रांति की वजह से भारत अनाज उत्पादन में आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ सब्जियों के उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। भारत में सब्जियां आहार की प्रमुख घटक हैं क्योंकि अधिकांश भारतीय शाकाहारी हैं। लेकिन इसके बावजूद भारत कुपोषण जैसी समस्या से जूझ रहा है। अगर परिस्थितियों पर नज़र डाली जाये तो आज भी भारत में 38.7 प्रतिशत बच्चे बौनापन, 15 प्रतिशत थकान, 19 प्रतिशत अधिक वज़नी तथा 23.0 प्रतिशत अल्प-भार समस्या से ग्रसित हैं। जबकि 53 प्रतिशत महिलाएं रक्तहीनता, 20.7 प्रतिशत अत्यधिक वज़न तथा 23 प्रतिशत अल्प भार की समस्या से ग्रसित हैं। सब्जी सेवन के आंकड़े दर्शाते हैं कि एक भारतीय औसतन 135 ग्राम सब्जी प्रतिदिन खाता है जो कि स्वस्थ शरीर एवम संतुलित आहार के लिये संस्तुतित 300 ग्राम प्रतिदिन प्रति व्यक्ति सेवन से बहुत ही कम है। लेकिन अब लोगों में स्वास्थ्य जागरूकता तथा जेब खर्च आय बढ़ने से फल और सब्जियों की मांग बढ़ रही है। इसलिए कुपोषण को मिटाने तथा अच्छी सेहत के लिये स्वस्थ भोजन थाली का एक बहुत ही सहज एवं सरल समाधान ऑर्गेनिक पोषक गृह वाटिका है जिससे किसान न केवल परिवार की पोषण एवं स्वास्थ्य सुरक्षा करने में सफल होंगे बल्कि यह उनकी आर्थिक समृद्धि में भी मददगार साबित होगी।

ऑर्गेनिक पोषक वाटिका से तात्पर्य सब्जी एवं फल उत्पादन की उस व्यवस्था से है जिसमें परिवार के सदस्यों द्वारा घर के पिछवाड़े या आसपास, खेत में ट्यूबवैल या खाली पडी ज़मीन, घर की छत या बॉलकोनी इत्यादि का उपयोग, गृह उपयोग के लिये फल एवं सब्जियां उगाने के लिये करते हैं। ध्यान देने योग्य यह बात है कि गृह वाटिका लगाये जाने वाले स्थान पर कम से कम 5 घंटे धूप आनी चाहिये तथा पानी की सप्लाई व निकासी का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। सम्भव हो तो रसोई घर के पानी का उपयोग लाभकारी रहेगा। हरियाणा में सब्जियां उगाने के लिये तीन प्रमुख मौसम हैं तथा इन मौसमों में उगाई जाने वाली प्रमुख सब्जियां एवं उनकी उन्नत किस्में इस प्रकार हैं :-

गर्मी या जायद का मौसम (फरवरी-मार्च से मध्य जून तक) : भिण्डी, लौकी, करेला, तोरी, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज़, टमाटर, बैंगन, मिर्च, पेठा आदि।

वर्षा या खरीफ का मौसम (मध्य जून से अक्तूबर तक) : भिण्डी, लोबिया, ज्वार, लौकी, खीरा, करेला, अरबी, पालक, टिण्डा, सेम, मिर्च, टमाटर इत्यादि।

सर्दी या रबी का मौसम (नवम्बर से फरवरी तक) : आलू, फूलगोभी, मटर, बंद/पत्ता गोभी, मूली, शलगम, प्याज़, लहसुन, पालक मेथी, धनियां, सौंफ, सरसों साग, बाथू इत्यादि।

गृहवाटिका में सब्जियों की अच्छी पैदावार लेने के लिये उनकी उन्नत किस्मों को लगाना आवश्यक है। महत्त्वपूर्ण सब्जियों की प्रमुख उन्नत किस्में इस प्रकार हैं :

गृह वाटिका का स्थान व आकार : घर के पिछवाड़े या आस-पास उपेक्षित पड़ी ज़मीन या खेत में मकान या ट्यूबवैल आदि के आस-पास खाली पड़ी ज़मीन पर बिना किसी विशेष सुविधा के गृहवाटिका लगाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त आज कल ग्रो बैग या खाली ड्रम या कैन का इस्तेमाल कर घर की छत या बालकोनी इत्यादि का उपयोग भी गृहवाटिका के लिये करें। गृह वाटिका लगाये जाने वाले स्थान पर कम से कम 5 घण्टे भली-भांति धूप आनी चाहिये तथा पानी का जमाव आदि नहीं होना चाहिए। जहां तक आकार का संबंध है यह भूमि की उपलब्धता व परिवार के सदस्यों की संख्या आदि पर निर्भर करता है। लेकिन एक औसत परिवार (5-6 सदस्यों वाला) को वर्षभर सब्जियां प्राप्त करने के लिये 30 मीटर लम्बा तथा 10 मीटर चौडा क्षेत्रफल पर्याप्त है।

भूमि की तैयारी : गृहवाटिका के लिये चयनित जगह पर यदि कंकर - पत्थर, घास-फूस हों तो उन्हें साफ कर देना चाहिये तथा उसके बाद क्यारियां बना लेनी चाहियें। क्यारियों के बीच चलने के लिये पगडंडी अवश्य रखनी चाहिये। क्यारियों में बिजाई से पहले कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट इत्यादि खाद को अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें। यदि आप गृह वाटिका के लिये गमलों, खाली ड्रम या ग्रो बैग का इस्तेमाल कर रहे हैं तो एक तिहाई गली-सड़ी गोबर खाद या कम्पोस्ट, एक तिहाई कोकोपिट व एक तिहाई मिट्टी का इस्तेमाल करें।

तालिका-1

सब्जियां	उन्नत किस्में
टमाटर	सलैक्शन-7, एन टी-8 और सलैक्शन-18
आलू	कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी जवाहर, कुफरी बादशाह, कुफरी सतलुज
मिर्च	एन पी-46-ए, पंत सी-1, हिसार शक्ति एवं हिसार विजय
रबी प्याज़	हिसार-2, पूसा रैड एवं हिसार प्याज़-3
खरीफ प्याज़	एन-53 (निपाद-53)
बैंगन	बी आर-112, हिसार श्यामल, हिसार प्रगति, एच एल बी-25 एवं हिसार बहार
लहसुन	जी-1, एच जी -17
मटर	आर्कल, पी एच -1 एवं बोनविले
गाजर	अगेती किस्में : पूसा केसर, हिसार गैरिक पछेती किस्में : नैंटिस
मूली	अगेती किस्में : पूसा चेतकी, पंजाब सफेद, हिसार श्वेती पछेती किस्में : जैपनीज़ ह्वाईट, ह्वाईट आइसिकिल
शलजम	अगेती किस्में : ह्वाईट -4 पछेती किस्में : पर्पल टॉप ह्वाईट ग्लोब
पालक	जोबनेर ग्रीन, आल ग्रीन, एच एस -23
भिण्डी	वर्षा कालीन मौसम के लिये : वर्षा उपहार, हिसार उन्नत गर्मी के मौसम के लिये पूसा सावनी
खरबूजा	पंजाब सुनहरी, हरा मधु
तरबूज़	चार्लेस्टन ग्रे, शूगर बेबी
घीया	पूसा समर प्रोलीफिक लौंग, पूसा समर प्रोलिफिक राउण्ड, पूसा नवीन
करेला	कोयम्बटूर लौंग, पूसा दो मौसमी तर
ककड़ी	लखनऊ अर्ली, करनाल सलैक्शन।
कद्दू पेठा	पूसा विश्वास, अर्का चन्दन
तोरी	काली तोरी पूसा नसदार चिकनी तोरी पूसा चिकनी
चप्पन कद्दू	पूसा अलंकार
टिंडा	हिसार सलैक्शन, बीकानेरी ग्रीन, हिसार टिण्डा
खीरा	जैपनीज़ लांग ग्रीन
सेम	हिसार क्रांति
धनिया	नारनौल सलैक्शन, पंत हरीतिमा, हिसार आनंद, हिसार भूमित
मेथी	पूसा अर्ली बंचिगं, हिसार सोनाली, कसूरी, हिसार मुक्ता

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

तालिका–2

विटामिन	कमी से होने वाले रोग	प्रमुख सब्जी स्रोत
विटामिन ए	रतौंधी	गाजर, पालक, चौलाई, टमाटर, बथुआ, कद्दू, पत्तागोभी, सरसों का साग
विटामिन बी$_1$	बेरी- बेरी	फूलगोभी, पालक, भिण्डी, सरसों का साग, टमाटर, गाजर
विटामिन बी$_2$	मुंह के किनारे फटना तथा चर्म रोग	बैंगन, चौलाई, टमाटर, पालक, गाजर, कद्दू, फूलगोभी, सरसों का साग
निकोटिनिक अम्ल (विटामिन बी$_3$)	पेलाग्रा	सेम, मूली, आलू, चौलाई, गाजर
फोलिक अम्ल खीरा	एनीमिया	चौलाई, पालक, प्याज़, पत्तागोभी, अरबी, गाजर,
विटामिन सी	स्कर्वी	करेला, पालक, सेम, शलजम, पत्तागोभी, मिर्च, फूलगोभी, सरसों का साग, आलू, टमाटर
विटामिन ई	बांझपन	हरी पत्तेदार सब्जियां, सहजन के पत्ते
विटामिन के	रक्त का थक्का नहीं जमता	सेम, पत्तागोभी, टमाटर, मेथी, आलू

बीज का चुनाव : अपने क्षेत्र व जलवायु के अनुसार फल व सब्जियों की उन्नत किस्मों का चयन करना चाहिये। बीजों की खरीद हमेशा विश्वसनीय संस्थान जैसे कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय, पूसा संस्थान, नई दिल्ली, राष्ट्रीय बीज निगम के अलावा अपने परिचित या विश्वसनीय प्रगतिशील किसान से करें। हो सके तो ऑर्गेनिक पद्धति द्वारा उत्पादित बीज या पौध का इस्तेमाल करें जो पहले से वर्णित है।

कीट एवं व्याधियों का नियंत्रण : गृह वाटिका में यदि किसी कीट का प्रकोप हो तो उसे आरम्भिक अवस्था में हाथ से नष्ट करें या बीमारी वाले पत्तों को तोड़ कर फेंक दें। ज़्यादा प्रकोप होने पर गौ-मूत्र, वर्मीवाश, नीम का तेल, दशपर्णी इत्यादि का छिड़काव करें।

गृह वाटिका के लाभ :

सस्ते, पौष्टिक एवं ताज़ा फल व सब्जियां प्राप्त होने के साथ-साथ घरेलू खर्च में बचत।

ज़हर मुक्त सब्जी उत्पादन एवं सेवन।

घर के पिछवाड़े, छत, बालकोनी व आस-पास की खाली ज़मीन का उचित उपयोग।

गृहिणी के मनोरंजन व व्यायाम का उत्तम तरीका है।

पर्यावरण सुधार के साथ विभिन्न विटामिनों की पूर्ति कर अनेक रोगों से बचाव करती है।

गृह वाटिका लगाने के लिये आवश्यक निर्देश :

बीज या पौधे हमेशा विश्वसनीय संस्थान से ही खरीदें।

पोषक वाटिका में पीछे की तरफ छोटे फलवृक्षों को लगाना अच्छा रहता है क्योंकि इन पौधों को बहुत अधिक देखभाल की आवश्यकता नहीं पड़ती।

पोषक वाटिका में पीछे बाड़ के सहारे एक मचान बना लें या तार बांध लें जिस पर बेल वाली सब्जियां उगाई जा सकें।

सहजन, नींबू, अमरूद आदि फलवृक्षों के नीचे छाया पसन्द फसल जैसे अदरक व हल्दी उगायें।

पोषक वाटिका की क्यारियों की मेंड़ों पर मूली, गाजर, शलजम, चुकंदर आदि को उगाना चाहिये।

पराली जलाने के सामाजिक एवं आर्थिक नुकसान

✍ **जतेश काठपालिया, रश्मि त्यागी एवं सुभाष चन्द्र**
समाजशास्त्र विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गेहूं और धान हरियाणा की प्रमुख फसलें हैं और ज़्यादातर इनकी कटाई कंबाईन हारवेस्टर के साथ की जाती है। हरियाणा में हर साल करीब 90 लाख टन गेहूं और धान के अवशेष जलाए जाते हैं। गेहूं के तने को समान ज्यादातर (80-90%) प्रेशर व स्ट्रा रीपर की मदद से भूसा बना लिया जाता है परन्तु धान की पराली के रख-रखाव की समस्या अभी भी बनी हुई है तथा किसान पराली को आग लगा देता है जिससे वातावरण में प्रदूषण की समस्या बढ़ती है। वैसे तो वर्ष 2007 में ही नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने पराली जलाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, लेकिन यह समस्या आज भी समाज में अपना फन उठाए बैठी है।

पराली को जलाने के नुकसान : धान की फसल की कम्बाईन हारवेस्टर से कटाई के बाद समय के अभाव के कारण, गेहूं की फसल की बुवाई से पहले, किसान पराली को आग लगा देते हैं, जिससे खेतों को तो नुकसान होता ही है साथ ही मनुष्यों व पशु पक्षियों की सेहत पर भी बुरा असर पड़ता है। आग लगाने से मिट्टी के पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं तथा उसकी उपजाऊ शक्ति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा जीवन पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। एक अनुमान के अनुसार मिट्टी से धान द्वारा ली गई 25 प्रतिशत नाइट्रोजन व फास्फोरस, 50 प्रतिशत गंधक व 75 प्रतिशत पोटाश फसल अवशेषों में ही रह जाती है। यह देखा गया है कि 10 क्विंटल अवशेषों को जलाने से 400 किलो जैविक कॉर्बन के अलावा 5.5 किलो नाइट्रोजन, 2.3 किलो फास्फोरस, 125 किलो पोटाशियम व 1.2 किलो गंधक का नुकसान होता है। ऐसे तत्व यदि नष्ट हो जाते हैं तो ज़मीन की उपजाऊ शक्ति को बहुत बड़ा नुकसान झेलना पड़ता है। इसके विपरीत यदि हम पराली को ज़मीन में ही छोड़ देते हैं तो ज़मीन की उत्पादकता तो बढ़ती ही है साथ ही मिट्टी की सेहत पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

पराली जलाने पर सेहत से जुड़ी कुछ समस्याएं : धान की पराली को आग लगाने से 70 प्रतिशत कॉर्बन डाइऑक्साइड, 7 प्रतिशत कॉर्बन मोनोऑक्साइड, 0.66 मीथेन व 2.09 नाईट्रक ऑक्साईड आदि कई तरह की गैसें निकलती हैं जो कि वातावरण में कई तरह के बदलाव लाने का कारण बनती हैं। पराली को जलाने से हानिकारक धुआं निकलता है जिससे कई तरह की गैसें निकलती हैं जिससे वातावरण तो प्रदूषित होता ही है साथ-साथ मवेशी एवं मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित कण शरीर के अन्दर जाकर खांसी को बढ़ाते हैं। अस्थमा, डायबिटीज़ के मरीजों को सांस लेना दूभर हो जाता है। फेफड़ों में सूजन सहित टॉन्सिल्स इंफेक्शन, निमोनिया और हॉर्ट की बीमारियां जन्म लेने लगती हैं। खासकर बच्चों और बुजुर्गों को ज़्यादा परेशानी होती है। धुएं के कारण किसानों के मित्र कीटों एवं पक्षी विलुप्त हो गए हैं जोकि खेती-किसानी में मददगार होते हैं तथा पर्यावरण संतुलन बनाए रखते हैं।

पराली जलाने की रोक हेतु सामूहिक प्रयास : बीते कई वर्षों से यह समस्या पेश आने पर राज्य सरकार ने शासनादेश जारी कर ज़िलाधिकारियों, पुलिस व नगर निकायों को आदेश दिए थे कि पराली जलाने पर तुरन्त अंकुश लगाएं। इसी कड़ी में ज़िला कृषि अधिकारियों को यह निर्देश दिए गए थे कि वह जागरूकता कार्यक्रम चलाएं। यदि नहीं एन.जी.टी. ने एन.सी.आर. में कई दिनों तक धुन्ध छाई रहने के बाद अक्तूबर 2015 में आदेश दिए थे कि कृषि अपशिष्ट जलाने से पर्यावरण को जो क्षति पहुंचती है उसका हर्जाना वसूला जाए। परन्तु हमारा यह मानना है कि सिर्फ कानून बनाकर ही समस्या से पार पाना संभव नहीं है। सरकारी स्तर पर हैप्पी सीडर, चोपर, ज़ीरो टिलेज मशीन, रोटावेटर जैसे कृषि यन्त्रों पर अनुदान राशि बढ़ाकर किसानों को प्रोत्साहित किया जाए ताकि पराली जलाने की समस्या को खत्म किया जा सके।

Rain Water Management in Dryland Areas

✍ **S. K. Sharma, Sube Singh[1] and Naveen Kumar**
Department of Agronomy
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

In dryland agriculture, water is the most limiting resource. Every drop of it should be conserved and used judiciously. In normal to above normal rainfall years, the substantial quantity of rain water is lost as runoff which can be used to recharge the ground water reservoir. The excess flow could be saved by diverting it into basins, pits, furrows, dugouts, ponds, recharge wells and tanks. In recent years, water conservation, harvesting and recycling *in situ* has become quite important due to poor pay off from large dams and other associated problems. Recently, a separate Jal Shakti Mantralaya has been set up by the Central Government. The programme on Jal Shakti Abhiyan has also been launched by the Government in more than 250 districts of the Country. The main aim of this Abhiyan is to create awareness about the importance of water conservation among the people. On the other hand, rain water management plays an important role under dryland conditions. Some of the common practices for efficient rain water management increasingly becoming important in dryland areas are as follows :

In situ Rain Water Conservation

It is the most efficient and cheapest approach for rainwater management. Traditionally bunding at specific intervals is done for water conservation systems. Contour bunding for medium textured soil having <600 mm rain and graded bunds with a slope of 0.1 to 0.5 per cent for heavy textured soils with more than 600 mm rain were recommended. For slopes, greater than 6 per cent, bench terracing should be adopted. The practices like repair of bunds, integration of bunds with vegetative barriers, land treatments and cultural manipulations of the inter bunded or inter terraced areas, soil surface and profile modifications in terms of land shaping, tillage across the slope and ridge furrow configuration should be practiced for obtaining higher and uniform soil moisture conservation in the soil profile.

Inter-plot Rain Water Harvesting

In the low rainfall situations it would be more appropriate to cultivate the crops in a part of the area. The rest area can be used as donor area (catchment) for rainwater harvesting for the cropped area. Inter-plot water harvesting resulted in about 50 and 60% improvement in pearl millet and taramira crops respectively, when 50% of the area was sown under inter-plot rainwater harvesting system. This method is more feasible and practicable for arid fruit trees and Agro-forestry systems because in field crops too much earth work is involved for shaping of land.

Inter-row Rain Water Harvesting

It is more practical and feasible approach for harvesting of rainwater for field crops. The harvested rainwater on inter-row basis (30/60 cm paired row planting by ridger seeder) has improved the yield of pearl millet in normal and below normal rainfall years. It also helps in improving the crop stand in small seeded crop by mitigating the adverse crust effects on germination and seedling burying problems due to rains. In addition, it helps in safe disposal of excess rainwater in high rainfall years.

Rain Water Harvesting in Farm Ponds

Under very high and extended rainfall condition, the runoff could be collected in a suitably designed farm dugout ponds. For South Western region 100-150 m^3 and for Shiwalik foothill region 400-600 m^3 have been identified as ideal size for storing runoff from one hectare area. Recycling of the stored water holds good promise provided storage efficiencies of farm ponds is improved. For arresting seepage losses of water, 5 cm thick plaster with mixture of pond silt + clay + 0.2 per cent sodium carbonate has been found quite effective. In arid conditions, construction of deeper tanks seems to be a feasible remedy for reduction of evaporation losses by 20-30 per cent.

Recycling

The harvested water should be recycled at the earliest either providing a life saving irrigation to **kharif** crop during severe droughts or a pre-sowing irrigation/supplemental irrigation at most critical stage to **rabi** crops. For efficient use of stored water sprinkler irrigation systems in field crops has been fully established. Establishment of arid horticultural and Agro-forestry systems with drip method of irrigation in the dry areas of the state has an immense potential for the efficient utilization of limited rain water resource.

[1]Direcorate of Extension Education, CCSHAU, Hisar

Importance of Zero Tillage in Agriculture

✍ **Dhinu Yadav, Leelawati and Sube Singh**[1]
Department of Microbiology
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

The idea of zero tillage was started in early 1940s by Edward Faulkner author of Plowman's Folly and he is considered as the father of zero tillage worldwide and in India, this concept was given by Jethro Tull. Zero tillage is defined as direct sowing of seeds in the field without any disturbance to the soil and conventional tillage is the mechanical disturbance of the soil through plowing, cultivation or digging. Zero-tillage has been used by the farmers since ancient time. Thus, it is one of the major management practices affecting soil physical parameters. Tilling of soil is used to remove weeds, shape the soil into rows for crop plants and furrows for irrigation. Conventional tillage completely inverts the soil, thus leads to unfavorable effects like soil compaction, loss of organic matter, degradation of soil aggregates, death or disruption of soil microbes and other organisms and soil erosion where top soils are washed or blown away. Zero-tillage causes only negligible soil disturbance and the residues from previous crops remain largely undisturbed at the soil surface as mulch thus, zero tillage avoids adverse effects caused by conventional tillage. Zero-tillage also known as conservational tillage, no till farming, direct drilling is an extreme form of minimum tillage. Zero-till farming encompasses four broad, intertwined management practices : minimal soil disturbance (no ploughing and harrowing),maintenance of a permanent vegetative soil cover, direct sowing and crop rotation. Zero-tillage farming helps in retaining the crop residues or other organic amenities on the soil surface and sowing or fertilizing is done with minimal soil disturbance.

Advantages

Zero tillage is more effective than conventional tillage practices if it is performed correctly. Less tillage of the soil reduces farm labour cost, fuel, farm machineries cost and cost of irrigation. Zero tillage can increase yield because of higher water infiltration and storage capacity and less erosion. Zero tillage can increase organic matter in the soil, which is a form of carbon sequestration. Zero tillage has carbon sequestration potential through storage of soil organic matter in the soil of crop fields whereas, when soil is tilled by machinery, the soil layers invert, air mixes in and soil microbial activity dramatically increases over base line levels. Tilling results in soil organic matter being broken down much more rapidly and carbon is lost from the soil into the atmosphere. Zero tillage improves soil quality, carbon, organic matter, aggregates, protecting the soil from erosion, evaporation of water and structural breakdown. A reduction in tillage passes helps prevent the compaction of soil and lowers the albedo of crop lands.

No-till farming, often when paired with crop covering (a technique in which a crop is planted for the express purpose of soil health), reduces carbon emissions through greater sequestration of carbon dioxide by the soil. Over half of the potential carbon sequestration from farmlands comes from conservation tillage. Carbon dioxide isn't the only greenhouse gas reduced by no-till, the release of nitrous oxide, a very dangerous greenhouse gas is also reduced through no-till. As more nitrogen is immobilized in the soil there is a reduced need for the application of nitrogen rich manure. Zero tillage helps in controlling noxious weeds, disease causing organisms and increases the amount and variety of life in and on the soil, including disease suppressing organisms. This is the result of improved cover, reduced traffic and the reduced chance of destroying ground nesting birds and animals as plowing destroys all of them. Furthermore, because the soil is not being frequently agitated, no-till farming promotes biodiversity in and around the soil. Organisms like mycorrhizal fungi, which make commensal (i.e. benefit both the plant and fungus) associations with crop roots, and earthworms, which increases the water retention of the soil, are allowed to flourish through no-till farming. Beneficial microorganisms like bacteria, fungi, actinomycetes and azotobacter can improve the soil organic carbon and aggregation under zero-tillage.

Our research findings on various microbiological studies in zero-tilled soils under various crop-rotations in different districts of Haryana revealed increased nutrient availability, build up of organic matter, higher microbial activity and diverse micro-flora.

Conclusion

Conservation of available resources is the urgent need as land and energy resources are limited. Continuous zero tillage, if managed very divergently, can play a vital role in conservation by sustaining the soil ecosystem leading enhanced agriculture productivity.

[1]Direcorate of Extension Education, CCSHAU, Hisar

Role of Vermi-compost for Healthy Soil and Environment

✍ **Rakesh Kumar, Vikas and Manoj Kumar Sharma**
Department of Soil Science
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Green revolution was attained through adopting the technologies, such as countless use of synthetic chemicals like fertilizers and pesticides, adoption of nutrient responsive, high-yielding varieties of crops, greater exploitation of irrigation potentials, etc. These technologies had boosted the production output in most cases. However, continuous use of these inputs indiscriminately now leads to decline in production and productivity of various crops as well as deterioration of soil health and environments. There is no doubt that in India, where on one side pollution is increasing day by day due to accumulation of organic waste and on the other side there is a great shortage of organic manure. Bio-wastes could be recycled by adopting simple and suitable techniques in compost making and preparing enriched manure. These improved technologies not only reduce the quantity but also improve the quality of compost with better plant nutrients. Vermi-compost could be used as an excellent soil amendment for main fields. Role of vermi-compost in nourishing agricultural crops has attracted the attention of researchers throughout the world. It is an effective way to convert waste into useful manure to help improving soil health and environment. Because the earthworms' casting is nutritive organic manure rich in humus, NPK, micro-nutrients, beneficial microbes, antibiotics, enzymes, growth hormones, etc. Accumulation and putrefaction of various wastes may cause several adverse effects on environment and living organisms including human health. Preparation of vermi-compost (organic manure) from various organic wastes will save our environment.

What is Vermi-compost?

It is the end-product of the breakdown of organic matter and waste products by using some species of earthworm in a controlled environment. It is a nutrient-rich, natural fertilizer and soil conditioner. Vermi-compost is also called as `worm compost`, vermicast, worm castings, worm humus or worm manure. The process of producing vermi-compost is called `vermi-composting'. Vermi-composting is a promising method of transforming unwanted and virtually unlimited supplies of organic wastes into usable substrates. In this process, the digestive tracts of certain earthworm species (e.g., *Eisenia fetida*) are used to stabilize organic wastes. The final product is an odorless peatlike substance, which has good structure, moisture-holding capacity, relatively large amounts of available nutrients and microbial metabolites that may act as plant growth regulators. Vermi-composting is an environmentally and economically friendly process to decompose organic waste.

Vermi-compost has following properties and benefits :

(a) There are beneficial microbes that also break down the organic materials in vermi-composting. As the organisms decompose the material, they change its chemical makeup and secretions in the worm's intestinal tract add concentrated nutrients.

(b) The cooperation between the worms and microbes produce humic acid and plant growth hormones. The humic acid binds to minerals and nutrients in the soil. It protects them from being degraded by the UV rays and/or washed out of the soil. The acid “holds” them in the soil in a form which can readily be absorbed by the plants. And lastly, the plant growth hormones cause earlier germination, larger crop yields and much deeper root development.

(c) Vermi-compost may have up to a 1,000 times higher microbial population than regular, pile compost. Compost piles break down materials using bacteria that thrive in high temperatures. These high temperatures kill off some of the microbes. But with vermi-compost, waste is broken down aerobically at moderate temperatures. This permits a much wider spectrum of micro-organisms to develop in the final product.

(d) Vermi-compost additions have been shown to help increase a plant's resistance to disease. The theory is that the high microbial content of vermi-compost increases microbial competition for the nutrients in the soil makes it harder for the harmful microbes to survive, i.e., the soil's health improves. The earthworms' castings also have pest repellent attributes.

(e) It can be produced in 1/3 of the time taken in regular compost preparation.

(f) Application of vermi-compost as organic manure in soil builts-up organic carbon, improves nutrient status, enhances cation exchange capacity, microbial activities, microbial biomass carbon and enzymatic activities.

(g) It also improves soil structure, soil aggregation and water retention capacity.

(h) Application of vermi-compost shows better result in comparison to chemical fertilizers in terms of soil physical and chemical properties as well as productivity of soil.

डॉ. प्रियंका रेड्डी के साथ हुए दुष्कर्म पर आक्रोश

क्यूं बचाएं हम बेटियां

क्यूं बचाएं हम बेटियां, क्यूं पढ़ाएं हम बेटियां
क्यूं न घर में ही कैद करके रखें, हम अपनी बेटियां

पर घर में भी कहां? सुरक्षित हैं बेटियां
जो बेटियां देश को सम्मान दिलवाती हैं
देश की रक्षा के लिए सरहद पर जाती हैं
अपने साहस का लोहा मनवाती हैं

घर और समाज दोनों के प्रति अपना फर्ज़ बखूबी निभाती हैं
उन्हीं बेटियों की इज्ज़त तार-तार की जाती है

हैवानियत की हर हद पार की जाती है और फिर भी .....
इन हैवानों को सज़ा-ए-मौत नहीं दी जाती है
सज़ा-ए-मौत नहीं दी जाती है।
कब तक ये सिलसिला यूं ही चलता रहेगा

चार दिन जुलूस और मोर्चा और फिर वही ठण्डा बस्ता
देश की सुरक्षा की बात की जाती है
पर बेटियों की सुरक्षा नज़रअंदाज़ की जाती है।

ऐ देश के रखवालो, कर्णधारो
अपने घर को सम्भालो
चांद और मंगल को जीतने का माद्दा रखते हो
पहले अपने घर के चांद को तो बचा लो

दो चार को सरेआम फांसी पे लटका के तो देखो
कानून का दम दिखा के तो देखो
इसी दहशत से कितने बलात्कारी सुधर जाएंगे
बस एक बार अपनी शक्ति दिखा के तो देखो

हम भी बेखौफ होकर जीना चाहते हैं
हम भी इंसान हैं ....
कभी हमारे बारे में भी सोच कर तो देखो
सोच कर तो देखो.....

– सुषमा आनन्द एवं शालिनी किंगर